UNIVERSAL
LIBRARY
OU_186087
UNIVERSAL
LIBRARY

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY
Call No H81 C49P Acc.No H4166

चतुर्वेदी मधुसूदन

प्रसाद का आँसू

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

ll No. H81 C49P Accession No. H4166

hor

e

This book should be returned on or before the date marked below.

प्रसाद का आँसू

साहित्य विभूषण
मधुसूदन चतुर्वेदी
एम. ए.

प्रकाशक :
चतुर्वेदी प्रकाशन समिति
कमतरी. आगरा, (उ. प्र.)
शाखा : १४–७–३, बेगमबाज़ार
हैदराबाद दक्षिण (आं. प्र.)

प्रथम संस्करण १०००
सं. २०२३ वि.

मूल्य : २.००

प्राप्ति स्थान :
भारतीय पुस्तक भंडार
बेगमबाज़ार, हैदराबाद दक्षिण (आं. प्र.)

मुद्रक : लोकविजय मुद्रणालय
हैदराबाद

कवर व चित्र कमर्शियल प्रिंटिंग प्रेस,
बेगमबाज़ार, हैदराबाद में मुद्रित ।

समर्पण

चि. राजा बदरीविशाल पन्नालाल पित्ती को सस्नेह

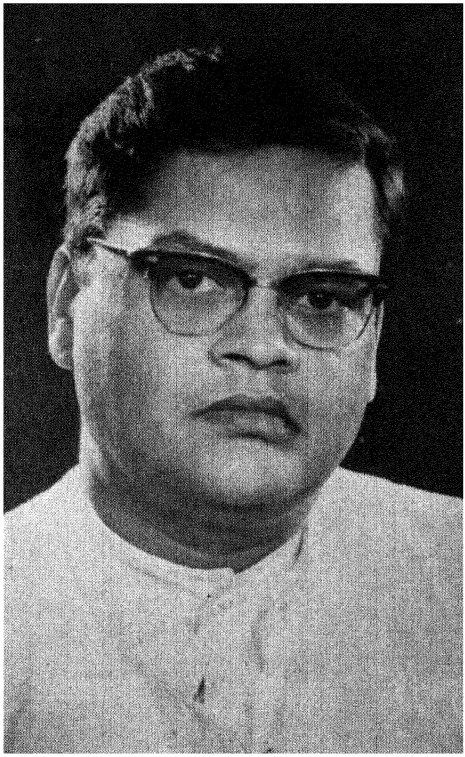

जिनके विद्यानुराग के कारण इस सरस काव्य का रसास्वादन संभव हुआ।

Checked 1966

देवोत्थान एकादशी
सं. २०२३ वि.

—मधुसूदन चतुर्वेदी
२३-११-६६

जयशंकर "प्रसाद" :

जन्म संवत् १९४६ – मृत्यु सं. १९९४

प्रसाद जी ने नवीन युग का द्वार हिन्दी-साहित्य में खोला है और कविता, नाटक, उपन्यास, कहानियाँ तथा खोज-सम्बन्धी लेख सभी दिशाओ मे आपन सफलता प्राप्त की।

काशी के एक प्रतिष्ठित धनी और उदार घराने में जयशंकर 'प्रसाद' का जन्म हुआ था। इनके दादा के समय से ही कवियो, गायको एवम् कलाविदों का इनके यहां प्राय: जमघट रहता था। एसे कुल में जन्म पाकर लडकपन मे करुणा, वैभव और कवि-समाज के वातावरण मे रहकर धीरे-धीरे साहित्य और पद्य-रचना की ओर इनकी रुचि बढी। सं. १९५६ में आपको नर्मदा के प्राकृतिक सौंदर्य, पुरी का समुद्र इत्यादि देखने का अवसर मिला। 'समस्या-पूर्ति', आपने बचपन से ही प्रारम्भ कर दी थी।

आपका 'प्रेम-पथिक' (१९६१) पहले ब्रज भाषा में लिखा गया था। बाद में (१९६७) उसे खडी बोली का रूप दिया गया। यह भिन्न तुकान्त काव्य है। कहानियाँ, नाटक, उपन्यास व खोज सम्बन्धी लेख सभी क्षेत्रों में उन्होंने असाधारण उन्नति

की। इन्होंने संस्कृत, उपनिषद, शैव-दर्शन और बौद्ध संस्कृति का अध्ययन किया। प्रसाद जी नूतन और पुरातन के बीच एक कडी थे।

'चित्राधार' आपकी प्रारम्भिक रचनाओं का सग्रह है। इसमें प्रकृति-प्रेम का प्राधान्य है। वह प्रकृति के विराट रूप को देखते हैं और प्रश्न करते हैं, यह सब क्या है? यह किसका खेल चल रहा है? 'काननकुसुम' (१९६९)'प्रेम-पथिक' (१८६५) 'करुणालय', 'महाराणा का महत्व' 'झरना' 'आँसू' में कवि के मस्तिष्क का क्रमिक विकास स्पष्ट है। 'लहर' और 'कामायनी' उन्हें महाकवि बना देते हैं।

मर्मज्ञों के मत

"प्रसाद ने जीवन को एक असीम चेतना-सागर में उठी हुई एक आनंद-लहर माना है। इस लहर के अनेक उत्थान-पतन हैं, अनेक भँवर, अनेक प्रवर्त्तन; परन्तु इसके भीतर ही आनन्द का वह मधुमय श्रोत है, जो मनुष्य को अपनी सत्ता के वास्तविक आनंद से परिचित कराता है। इस असीम आनन्द की अन्त: प्राप्ति के लिय कवि उस महान् चेतन सत्ता की ओर देखता है, जो सृष्टि के अनेक रूपों में व्याप्त है और जो अज्ञात होने पर भी आत्मा के लिए चिर-परिचित है। इस हल-चल भरे संसार से हट कर कवि एक अत्यन्त दूर के रहस्यमय लोक में जाना चाहता है, जहाँ जीवन की उत्तेजना से अलग वह अपनी सत्ता का आनन्द प्राप्त कर सके।"

कवि प्रसाद : एक अध्ययन — रामरतन भटनागर-एम. ए.

"प्रसाद का सन्देश है कि विज्ञान और बुद्धि की अपनी सीमाएँ हैं- ये आसुर भाव को जाग्रत कर सकते हैं। देव-भाव को जाग्रत के लिए श्रद्धा की ओर देखना होगा।"

"ज्ञान-भूमि, भाव भूमि और कर्म-भूमि में संघर्ष ही आधुनिक मानव की विडम्बना है।"

'प्रसाद' ने 'प्रकृति' और विकृति (गृहस्थ और वैराग्य) की बँधी हुइ लीक को छोड़ कर 'मर्यादा भाव, को अपनाया।"

"प्रसाद की रचना में मौलिकता के पक्षों की अनेकता उसकी लोकप्रियता में बाधा है।"

"प्रसाद के काव्य की सब से सुन्दर चीज़ उनकी उदात्त और सम्पन्न कल्पना है।"

"छायावाद के कवि ने नारी को वासना के गर्त्त से उठाकर उसे हृदय-देवी बनाकर अनेक ढग से उसकी छवि अंकित की।"

"प्रसाद ऐश्वर्यशील प्रकृति-चित्रों के लिय प्रसिद्ध है।"

कामायनी के प्रकृति चित्र विश्व-काव्य के सर्वश्रेष्ठ प्रकृति-चित्रों के सम्मुख रखे जा सकते हैं।

'प्रसाद की शैली में नीरसता कहीं नहीं। कामायिनी का कथानक शिथिल है। पहले प्रसाद ने केवल कथा-सूत्र भर लेकर प्रेम-काव्य लिखने का प्रयास किया- परन्तु बाद में रूपक का सहारा लेकर इस कथा को जीवन-दर्शन का रूप दे डाला। इस प्रकार कथा की अविच्छिन्न धारा में बाधा पडी। फल यह हुआ कि काव्य का उत्तर भाग जटिल दार्शनिक तर्क नाटकों से बोझिल हो उठा है। पहले भाग में कार्य और कला के उच्चतम तत्व हैं। 'कामायिनी' में भी प्रसाद 'नाटककार' बनना नहीं छोड सके।

"वे सूक्ष्म मनोतत्वों के विकास की कथा भी कह रहे हैं।"

"स्पष्ट है कि भाषा, भाव, शैली की प्रौढता और कुछ दार्शनिक संदेश की दृष्टि से आधुनिक ग्रन्थों में 'कामायिनी' बेजोड है। तुलसी के 'मानस' (१५५७ ई.) के बाद जीवन की विशद व्याख्या और नवीन जीवन के संदेश को सामने रखन

वाला ग्रन्थ अब तक नहीं आया। सन्देश तो है मगर उसका ग्रहण करना कठिन है।

सौन्दर्य प्रिय दार्शनिक मन को कामायिनी संतुष्ट कर सकेगी।

'कामायिनी नए युग की सारी प्रवृत्तियों को आत्मसात किए है।'

'प्रसाद संस्कृत हृदय मानव के कवि हैं।'

'प्रसाद' ने काव्य में युग की चेतना ग्रहण की है।' वे गाँधी जी के स्वराज्य के स्वप्नो से और आगे बढकर 'आनन्द-लोक' का स्वप्न देखते हैं।

'प्रसाद का अपना काव्य आनन्दवाद धारा का वर्तमान संस्करण है।

अरस्तू कला को Imitation मानता है। प्रसाद भारतीय समीक्षको के अनुसार उसे लोकोत्तर आनन्द का विधायक मानते 'आज के बुद्धि-जीवा, विश्लेषण प्रधान, हैं। काव्य 'कला' से बहुत ऊँची श्रणी की वस्तु है। वह साक्षात् दर्शन है। शुद्ध काव्य मे आत्मानुभूति की प्रधानता है।

'"कामायिनी' महाकाव्य न होकर एक उत्कृष्ट स्वच्छन्द कथा (Romance) मात्र रह जाती है। उसकी आत्मा 'गीति प्रधान' है। अपनी विशिष्ट शैली के कारण वह महाकाव्य न होकर विशाल गीति कथा-काव्य है।"

शैव दर्शन में ज्ञान और भक्ति दोनों का सामंजस्य है।

"'आँसू' मानव-जीवन' की विरह-कातरता और व्यथा के बीच हमारी अनुभूतियों को विकसित करता, हमारी सहानुभूतियों को बढाता हुआ, हमें दुःख और पीडा के जगत से बाहर निकाल ले जाता है। यहाँ विरह में मिलन है और दुःख में सुख है।'

'आँसू' एक श्रेष्ठ विरह-काव्य और गीति-कविता का सुन्दर नमूना है। मानव-हृदय की आकांक्षाओं के प्रति सहानुभूति का ईस में चरम विकास है। कवि निःसंकोच भाव से विलासमय जीवन का वैभव दिखाकर, उसके अभाव मे आँसू बहाता है और अंत में जीवन से समझौता करता है। अपन यौवन में जिस वैभव के साथ कवि क्रीडा करता रहा, उसके अभाव के दिनों में उसकी याद करते रोता है। रोते-रोते इस विरह में जगत का, प्रकृति का जो सत्य है, उसे भी हृदयंगम कर रहा है। 'आँसू' के अंत में इसीलिए दार्शनिक निर्देश की प्रधानता है। पुराने प्रेम-पत्रों को उलट कर देखने पर जो एक प्रकार की हसरत आँखों में आकर झांकने लगती है, जो एक व्यथा होती है और लंबी आह निकल जाती है, यह 'आँसू' भी वैसा ही है।'

'आंसू' का विषय-निरूपण

कविवर प्रसाद का 'आँसू' पर्याप्त लोकप्रिय ग्रंथ है। बहुधा काव्यरसिक उसकी पंक्तियों का झूम-झूमकर पढ़ते हुए देखे जाते हैं। जहाँ 'आँसू' का ज़िक्र हुआ लोगों के मुँह से अनायास ही निकल पड़ता है—

"जो घनीभूत पीडा थी, मस्तक में स्मृति-सी छाई
दुर्दिन में आँसू बनकर वह आज बरसने अई।"

यही नहीं, १०-२० पंक्तियाँ 'आँसू' की और भी हैं, जो विशेषरूप से काव्य-प्रेमियों के हृदय में सदैव आनन्द का उद्रेक करती रहती हैं; मगर जब हम सम्पूर्ण 'आँसू' पुस्तक का अध्ययन और मनन करते हैं, तो कुछ गम्भीर प्रश्न सामने आते हैं।

'आँसू' वर्तमान युग के एक महाकवि की रचना है। उसे पढ़ते समय पाठक बड़ी-बड़ी आशाएँ हृदय में लेकर पृष्ठ के बाद पृष्ठ पलटता है। पुस्तक का शीर्षक 'आँसू' है, इसलिए वह आशा करता है कि कवि ने इस पुस्तिका में ऐसी सामग्री एकत्र की होगी, जिसे पढ़कर उसके हृदय में करुणा का संचार होगा और उसकी आँखों से 'आँसू' बरबस बह निकलेंगे। परन्तु जब पुस्तक को आदि से अन्त तक पढ़ जाने पर भी उसका बह आँसू पोंछनें

के लिए एहतिआतन रक्खा हुआ रूमल सूखा ही रह जाता है, तब उसे घोर निराशा होती है। कवि की वेदना का आभास पाने के स्थान में वह देखता है कि आधुनिक युग के कवि की आधुनिक कल्पना आधुनिक युग के सर्वश्रेष्ठ तीव्र-गामी साधन नवीन निर्मित अमेरिकन वायु-यान पर सवार होकर ४०० मील प्रति घटे की चाल से समस्त संसार का चक्कर लगा रही है। यान की गति इतनी तीव्र है कि पृथ्वी की कोई वस्तु उससे स्पष्ट नहीं देखी जा सकती। हाँ, अत्यन्त विशाल वस्तुएँ, जैसे समुद्र, महासागर, हिमालय इत्यादि पर कभी-कभी निगाह जम जाती है। आकाश मे उड़ने के कारण आकाश की वस्तुएँ, जेसे नक्षत्र, स्वर्गङ्गा, ऊषा, प्राची का सूर्य, कुछ अदिक स्पष्ट दिखलाई देती हैं।

कविवर प्रसाद के सुप्रसिद्ध आलोचक श्रीरामनाथजी 'सुमन' ने आँसू' का परिचय देते हुए लिखा है—"इसमें पुरान रंग अधिक हैं।.....इसमें रहस्यवाद या छायावाद की छाया नहीं, पर इसमें वही वह व्यक्त हुए हैं।" इस कथन में 'पुराने रंग' और 'वही वह' से क्या तात्पर्य है, कुछ स्पष्ट नहीं किया गया। श्रीनन्ददुलारे वाजपेयी का उद्धरण कुछ अधिक स्पष्ट है—' 'आँसू में कवि निस्संकोच भाव से विलासमय जीवन का वैभव दिखाता, फिर उसके अभाव में 'आँसू' बहाता और अन्त में जीवन से समझौता करता है।' सुमनजी ने भी इसी बात को अधिक स्पष्ट किया है और 'आँसू पुस्तिका का यही विषय समझकर उसे पढ़ा जाए तो बहुत से भाग कुछ-कुछ स्पष्ट होने लगते हैं।

'आँसू' के समझने में कुछ कठिनाई अवश्य है। सुमनजी स्वयं लिखते हैं—"बहुतों ने 'आंसू' की पंक्तियों को देखा है और उनमें प्रकट कल्पना और भावना की श्रेष्ठता की प्रशंसा की है। पर काव्य के समीक्षक की दृष्टि से लोगों ने 'आँसू' की आत्मा को ठीक रूप में देखा और पहचाना हो, ऐसा मुझे नहीं जान पड़ता।" वास्तवमें 'आँसू' का विषय एक अजीब पहेली है। यह तो नाम से स्पष्ट है कि यह एक रुदन-काव्य है। आदि से अन्त तक कवि ने उसमें अपने हृदय की पीड़ा का चित्र खींचा है। अँगरेजी-साहित्य के तीन महा-कवियों ने अपने मित्रों की मृत्यु पर रुदन-काव्य (Elegy) लिखे हैं। कविवर ग्रे ने देहांत के क़ब्रिस्तान में बैठकर अपनी विचार-धारा तरंगित की है। परन्तु 'आँसू' किस वातावरण का परिणाम है, इस सम्बन्ध में 'प्रसाद' के जीवन-लेखक मौन है। कवि की जीवनियों में किसी ऐसी घटना का उल्लेख नहीं है, जिसके दुःख से प्रेरित होकर उसने यह काव्य-ग्रंथ लिखा हो।

पथ-प्रदर्शकों की धारणा को सत्य मानकर हम 'आँसू' में तीन धाराओं की आशा करते हैं—(१) विलास-मय जीवन का वैभव, (२) उसके अभाव में आँसू बहाना, (३) जीवन से समझौता—जिसका आशय अपने भाग्य पर सन्तोष करना है। समस्त पुस्तिका में अधिकांश अंश इन तीन शीर्षकों के अन्तर्गत आ जाते हैं, मगर उनकी विचारधारा इतनी स्पष्ट नहीं है, जितनी ऊपर के परिचय से समझी जाती है। यह तो पथ-प्रदर्शकों का परिचय है। आइये, स्वयं चलकर उद्यान की सैर करें और देखें कि उसकी तीनों क्यारियाँ किस प्रकार सजाई गई हैं।

समस्त 'आँसू' पुस्तिका में १९० छन्द हैं, जिनमें एक छन्द "जो घनीभूत...." दो स्थलों पर छपा है। पुस्तिका में बिना शीर्षकों के १८ भाग है। इन पर संख्या भी नहीं पड़ी है। प्रकाशकों ने केवल पुस्तिका के उस पृष्ठ का, जहाँ से नवीन विचार-धारा प्रारम्भ होता है, कुछ अंश रिक्त छोड़ दिया है। इस प्रकार इन १८ भागों में हम १८ प्रकार की कल्पनाओं को साक्षात् करने की आशा कर सकते हैं। यदि इन १८ अंशों को उपशीर्षक प्रदान किये जा सकें तो, 'आँसू' का विषय अधिक स्पष्ट हो जायगा।

प्रथम अंश में केवल एक छन्द है, जो प्रथम पृष्ट पर छपा है। इस छन्द में पुस्तक का सार है। इससे व्यक्त होता है कि हृदय की एकत्र पीड़ाओं के बादल 'आँसू' के रूप में बरस पड़े हैं। यही छन्द पृ० १४ पर पुनः आया है। इसलिए बहतर होगा कि इस छन्द को हम केवल पुस्तक का सार-वाक्य समझकर समस्त पुस्तक मे १७ अंश और १८९ छन्द मानें।

वास्तविक प्रथम अंश पृष्ठ ७ से ८ तक है। इसमें ४ छन्द है, जिनमे कवि कुछ बहके-बहके प्रश्न पूछता है। वह कहता है—'इस करुणा से सजे हुए हृदय में अब विकल रागिनी बजती है, और हाहाकार स्वरों में असीम वेदना गरजती है—ऐसा क्यों होता है? उसके हृदय-समुद्र के किनारों पर सुन्दर लहरों की चोटें कल-कल ध्वनि से कुछ भूली हुई पुरानी बातें क्यों कहती है? उसकी प्रतिध्वनि शून्य क्षितिज से क्यों लौट आती है? वह टकराती हुई—बिलखाती हुई-सी पगली-सी क्यों फेरी देती है? उसकी चेतना-धारा दोनों छोर छिटकाकर व्यथित व्योम-गंगा सी क्यों

मृदुल हिलोरें लेती है ?" इन प्रश्नावली में 'करुणा-कलित-हृदय' 'हाहाकार स्वरों', 'असीम वेदना', 'बिलखाती' और 'व्यथित, शब्दों से किसी दुःखित हृदय का कुछ आभास मिलता है। कवि यहाँ विलासमय जीवन के अभाव में आँसू तो नहीं बहाता है, 'विकल-रागिनी' में 'असीम वेदना' गरजती है। क्यों गरजती है—यह अभी कवि को ज्ञात नहीं। इसलिए प्रथम अंश का उपशीर्षक 'वेदना के कारणों की खोज" अधिक उपयुक्त रहेगा।

द्वितीय अंश पृष्ठ ९ से १२ तक है। इसमें ११ छन्द हैं। प्रथम छन्द में कवि अपने हृदय में स्मृतियों की एक बस्ती पाता है, जिसे वह अपनी ज्वालामयी उस जलन के स्फुलिंग के रूप में देखता है। ये स्मृतियाँ 'शीतल-ज्वाला' हैं जिसके लिए 'आँसू' ईधन का काम देते हैं। इनका कारण प्रणय है, जिसमें जलन ठीक वैसे ही छिपी हुई थी जैसे समुद्र में वाड़वाग्नि छिपी रहती है। स्मृतियों के कारण अश्रु-प्रवाह होता है। हृदय की वेदना को और भी आघात पहुँचता है। स्मृतियों के कारण कवि ने सुख भी त्यागकर वेदना को अपनाया है। सोती हुई व्यथाएँ जागती हैं और आँसू गिरते है। उन दिनों के आनन्द का स्मरण कर हृदय हिल जाता है,और करुणा तक रोती है। अतएव इस अंश का शीर्षक "अतीत की स्मृतियों से उत्पन्न हुई वेदना" रखना उचित जान पड़ता है।

तृतीय अंश सबसे बड़ा है। इसमें पृ० १३ से २० तक २३ छन्द हैं। इनमें कवि कहता है कि उसकी कहानी करुणोत्पादक है। उसकी वेदना पर ध्यान देने का समय किसके पास है।

उसके जीवन की समस्याएँ बहुत जटिल हैं। उनकी एकत्र पीड़ा आँसू बनकर बरस पड़ी हैं। क्रन्दन में दूसरे लोगों को क्या आनन्द मिल सकता है? वह रो-रोकर अपनी कहानी सुनाता है—दूसरे लोग क्यों उससे सहानुभूति रखकर उनकी वेदना को भुलाने का प्रयास करते हैं? वह अपनी पीड़ा पर ही 'सोहित', 'बेसुध', और 'बलिहारी' था। उसके विरही हृदय में हाहाकार, टीस और अश्रु-प्रवाह, सभी निवास करते हैं। आनन्द के अभाव में पूर्व-स्मृति की 'प्रलय-घटाएँ' उसके हृदय को और भी अंधकारपूर्ण बना देती है। प्रिय की स्मृति टीस उत्पन्न करती है और आँसू बरस पड़ते हैं। कवि अपने प्रिय को अब भी 'जीवन-संगी' समझता है; क्योंकि उनकी स्मृति सदैव उसके साथ है। रो-रोकर उसने रातें काटीं। उसे प्रिय से भेंट करने का अभिमान था। पहले ही दर्शन में उसके प्रिय उसे चिर-परिचित जान पड़े थे। जैसे समुद्र-लहर और चन्द्र-किरण गले मिलते हैं, वैसे ही उसने भी प्रिय से भेंट की। वह अपने प्रिय को देख-देखकर कविता बनाया करता। उन दिनों आनन्द में मग्न हो वह मंत्र-मुग्ध था। प्रिय ने उसके शुष्क-हृदय में नव-रस का संचार किया। उसके प्रिय अपने चन्द्र-मुख पर घूंघट डाले हुए पास आये। प्रियतम की छवि उसकी आँखों और हृदय में समा गई। उसके प्रिय बहुत सुन्दर थे। इस अंश में कवि ने पहले अपने हृदय की वर्तमान वेदना की ओर संकेत करते हुए उन परिस्थितियों को स्पष्ट किया है जिनमें प्रिय से उसका साक्षात् हुआ था। इस अंश का शीर्षक 'वर्तमान वियोग और अतीत का संयोग' अधिक उपयुक्त होगा।

चतुर्थ अंश के १४ छन्दों में कवि अपने प्रिय के नख-शिख का वर्णन करता है। प्रिय के केश-पाश, चन्द्रमुख, आँखें, आँखों में अंजनरेखा, वरुणी, हास्य और भौंहें, दाँत और नासिका, हास्य, कान, बाहु-लता, पवित्र शरीर, सभी छलना थे; फिर भी कवि का उनमें घना विश्वास था। ऐसे सौंदर्य में कवि-हृदय उलझ गया। इस अंशका शीर्षक "प्रिय के सौंदर्य का आकर्षण" ठीक होगा।

पंचम अंश (पृ० २६-२८) के ७ छन्दों में 'विलासमय जीवन का वैभव' है प्रभात में पेडों की पत्तियाँ हिलती थीं, भ्रमर गुनगुनाते थे, फूल खिलते थे। परिरम्भण का सुख था, चाँदनी रात्रि का आनन्द था। मगर अब उसकी आशा नहीं। प्रिय ने आँखें फेर लीं। प्रेम-कमल मुरझा गया। जीवन में प्रिय के साथ जो आनन्द था, वह अब नहीं है।

छठे अंश (पृ. २६-३४) में १५ छन्द हैं। इनमें कवि प्रश्न करता है कि उसका आनन्द कहाँ विलीन हो गया? निर्जन की मुरली के समान उसका आनन्द किसी अदृश्य शक्ति के अधीन रहा। अब तो वह सब कुछ भूला जा रहा है। उसके प्रिय ने उसका हृदय कुचल डाला। अब वह विरहाग्नि में जलता है। सन्ध्या के समय वह पुनर्मिलन की आशा लेकर रोया करता है। कवि संध्या को अपने जले हृदय के धूम्र के रूप में देखता है। रात में जब सब कुछ मौन है--प्रणय-चिन्तन उसे व्यग्र बना देता है। रात भर रोते कलपते कवि प्रभात में मृतप्राय और उत्साहहीन हो जाता है। प्रभात का समीर उसे दुःखदायी प्रतीत होता है।

सारी रात कोरी आँख जागकर प्राची के चुम्बन-अंकित पीले कपोल देखकर वह इर्ष्या से प्रभात में सोना ही अधिक श्रेयस्कर समझता है ! प्रभात में पृथ्वी का अंचल तो ओस-कणों से भर जाता है, मगर कवि रात भर रोते-रोते 'छूँछा बादल' बन जाता है। कवि के जीवन में अब प्रेम करने योग्य केवल पलकों में समाया हुआ प्रिय का सौंदर्य ही है। कवि के हृदय की समस्त कामनाएँ प्रिय के उसी सौंदर्य से सम्बन्ध रखती हैं। प्रिय का सौंदर्य छाया—नट बनकर सामने आता है और अपना खेल दिखलाकर चला जाता है। कवि प्रिय के चले जाने से अपनी सुध-बुध खो रहा है—उसके प्रिय विद्युत्-गति से आये और आनन्दों की झलक छोडकर चले गये। इस अंश में कवि की 'विरह-दशा' का चित्र है।

सातवें अंश (पृ० ३५-३७) में केवल ५ छन्द हैं। प्रिय की स्मृति कवि को रुलाती हुई आती है; परन्तु इस रुदन से उसकी हृदय-कली खिल जाती है। इस रुदन से उसके मनो-मन्दिर में मोतियों का ढेर लग जाता है। शीतल-समीर का स्पर्श कर भी वह रो उठता है। कवि रात को आकाश के तारे गिनता है। वह प्रिय के चले जाने पर पुनर्मिलन की आशा और दुःख को अपना साथी समझता है। "प्रिय के अभाव में आँसू बहाना" इसका शीर्षक उचित ठहरेगा।

आठवें अंश (पृ० ३७-३९) में ६ छन्द हैं। प्राचीन सुख का स्मरण करते समय कवि नहीं जान पाता कि उसका दुःख कब प्रारम्भ हुआ। उसका हृदय प्रेम-रंग में पूरा रँग गया है। आँसू

से धोये जाने पर वह रंग और भी सुन्दर हो जाता है। प्रिय-दर्शनों की कामना ने उसे चित्रकार बना दिया है और अपने प्रिय का चित्र वह सदैव अपने हृदय के पर्दे पर खींचता रहता है। प्रिय ने जो पहले कृपा की थी वह अब जलन का कारण है। उस समय तो उस आनन को देख-देखकर हृदय आनन्द से भरता था, अब उसके स्मरण से दुःख होता है। अब वह अपनी वेदना का वर्णन साहस से करता है; क्योंकि अब वह उससे अभ्यस्त हो गया है। प्रिय ने उससे पहले प्रेम किया, फिर आँखें फेर लीं। इस अंश का शीर्षक "प्रिय की स्मृति" हो सकता है।

नवम अंश (पृ० ४०-४६) में १९ छन्द हैं। कवि जीवन नौका के नाविक से पूछता है कि वह उसे कहाँ ले आया है? वह अपनी वर्तमान दशा पर सन्तोष करना ही अधिक उपयुक्त समझता है। वह चाहे भी तो इस दशा में कोई परिवर्तन नहीं हो सकता; क्योंकि अब न तो उसमें शक्ति ही शेष है और न किसी का सहारा। पहले जीवन की कठिनाइयों में प्रिय के मुखचन्द्र के दर्शनों से कुछ शान्ति भी मिलती थी; परन्तु अब तो आनन्दरहित जीवन में केवल आँसू बहाना ही शेष है। सुख पाने की अभिलाषा से उसने इस संसार-समुद्र का बहुत मंथन किया; परन्तु उसके हाथ केवल जलन ही लगी। उसकी विरह-जन्य आहें प्रलय के दृश्य उपस्थित कर सकती हैं। उस समय उसकी आत्मा धूल के कणों में प्रेम की उत्कृष्ट चमक के कारण चमकेगी और सुगन्ध बनकर उड़ेगी और जिस गृह में उसके प्रिय होंगे, वहीं

टकरावेगी। आश्चर्य है कि स्वार्थमय जीवन में प्रेम के लिए त्याग के भाव कैसे समा गये। प्रिय का मुखचन्द्र तो उसके हृदय में है—जिस प्रकार चन्द्र के लिए चकोर अंगार चगता है—कवि वियोगाग्नि सहता है। प्रेमोन्मत्त पतग जलकर भी चमकता है। नाना चिन्ताओं से ग्रस्त होने पर भी कवि क मन में प्रिय के चन्द्रमुख का स्मरण होता है। यह कहना भूल है कि मनुष्य का वह जीवन सफल है, जिसमें वह प्रेम में निमग्न हो, पर अचानक किसी दिन बिना उसकी इच्छा के उसे अपने प्रिय से अलग होना पड़े। यदि मनरूपा कलिका का स्वल्प जीवन प्रिय क चिन्तन में व्यतीत हो और चुपचाप वह इसी चिन्तन मे घुल-घुलकर अपना जीवन समाप्त कर दे तो उसमें उसके प्रिय की क्या हानि है? कवि ने अपनी समस्त मनोकामनाएँ प्रिय को समर्पित की हैं; भय है कि वे उन्हें ठुकरा न दें। संसार में सुख और दुःख दोनों हैं। मरने के बाद इन्हीं की चर्चा शेष रह जाती है। इसी सुख-दुःख में लीन रहकर सभी प्राण किसी दिन विलीन हो जाएँगे। मनुष्य के मन और आँखों का यही मनोरंजन है कि वे जीवन के सुख और दुःखों का अनुभव करते रहें। उस अंश में कवि की विचारधारा उसे अपनी वर्तमान दशा पर सन्तोष करने का उपदेश दे रही है। कुछ छन्दों (छन्द १ से ४ व ५५ से १९) में वर्तमान वियोगावस्था का परिचय है। इस अंश का शीर्षक "वर्तमान दशा पर सन्तोष" उपयुक्त जँचता है।

दसवें अंश (पृष्ट ४७–५१) में १४ छन्द हैं, जिनमें

कवि ने अपने हृदय के दुःख को व्यक्त किया है। उसके प्रिय अपनी झलक दिखलाकर चले गये; अब उसके प्राण विकल होकर रोते हैं। उसका सुख तो संध्या का घना अंधकार उलझा ले जाता है। रात दुःख में कटती है और दुःख ऊषा की पलकों में छलकता है—प्रभात मे ही पुनः दुःख का प्रारम्भ हो जाता है। प्रिय के संयोग में सुख-दुख दोनों साथ थे। ईश्वर की सृष्टि में तो सुख-दुःख दोनों हैं; परन्तु सुख आकाश की ओर खिच गया है और दुःख पृथ्वी पर आ गया है। कवि से आकाश सुख माँगता है और पृथ्वी दुःख—अपने जीवन का सर्वस्व (सुख-दुख) देकर वह शून्य भाव से प्रिय के मुख का चिन्तन किया करता है। उसे आश्चर्य है कि उसका असीम सुख प्रिय की मुट्ठी में कैसे समा गया। प्रिय किस दुःख के कारण उसका सुख लेकर भाग गये। प्रिय के साथ तो दुःख भी सुख था; परन्तु अब तो प्रिय उसे दुखिया बनाकर सुखी हो रहे हैं। कवि सुख-दुख दोनों से तटस्थ रहकर दोनों के फिर एक स्थान पर आन की आशा रखता है। उसकी वेदना भी उसी दशा में शान्तिदायिनी मेघमाला बन जायगी। सारा संसार ही दुखी है। प्रकृति दुखिया संसार में अपना मन बहलाती रहती है। वह प्रिय से पुनः एक बार आने की प्रार्थना करता है। इन छन्दों में "प्रिय का सुख लेकर भाग जाना" ही महत्त्वपूर्ण है।

ग्यारहवें अंश के दो छन्द (पृ० ५२) 'आशा और निराशा' के चित्र हैं।

बारहवें अंश (पृ० ५३-५६) के ९ छन्दों में कवि ने

समस्त संसार को दुःखमय देखा है। उसकी वेदना चौदह भुवन का चक्कर लगा आती है; मगर सुख कहीं नहीं दिखलाई देता। यदि ससार के किसी प्राणी को शान्ति मिलती है, तो रोते-कराहते थक जाने के कारण, कवि रात से प्रार्थना करता है कि वह दुःखितों को शान्ति दे। पुरानी बातों को भूल जाने से ही शान्ति मिलती है। विस्मृति से भी कवि उतना आनन्द पा सकता है, जितना बिछुड़े हुओं से मिलकर पाता है। "विस्मृति द्वारा शान्ति-लाभ की आशा" इन छन्दों में प्रधान है।

तेरहवाँ अंश (पृ० ५६-५८) ५ छन्दों का है। कवि की आँखों के आँसू अब आँखों मे ही सूख जाते हैं। कवि इस चुपके से रोने के विरुद्ध है। आँसू तो गिरकर ही अपना प्रभाव दिखलाते हैं। प्रिय यदि उसे रोता देखकर हँसते हैं, तो हँसें—उसे तो भी रोना ही चाहिए। वह समस्त संसार की वेदनाओं को अपनाने को तैयार है। इस अंश का शीर्षक "अश्रु-प्रवाह से आशा" उचित है।

चोदहवाँ अंश (पृ० ५९-६३) १२ छन्दों में 'कवि-हृदय की ज्वाला' व्यक्त करता है। रात में: बरसात में, जब संसार की वेदना शान्त रहती है, उस समय कवि-हृदय की वेदना-ज्वाला जलती है। व्यथित विश्व की होली के समान यह ज्वाला सारा कलुष जला देगी। इस ज्वाला का संसार में फैलना कवि को अभीष्ट है। इसके प्रकाश में संसार से उसकी आत्मीयता बढ़ती है। छोटे-मोटे दुःख कुछ असर नहीं डालते। इस ज्वाला को कवि कल्याणमयी समझता है।

पन्द्रहवें अंश (पृ० ६८-६९) में प्रिय से पुनः जागने की प्रार्थना है। इसमें १७ छन्द हैं। वह प्रिय, जिनके आगे जीवन सिसकी भरता है, मृत्यु नृत्य करती है—अमरता खड़ी मुसक्याती है—वह उसके प्रेम-विहँसते मधुवन में जागे, जिससे मधुर भावनाओं का इस जीवन में फिर कलरव हो। उसकी आहों में, सुस्मित में सोनेवाले जगें, सर्व-सुन्दर प्रियतम जागें, जिससे नई अभिलाषाएँ हों। आशाएँ पूर्ण हों, प्रेम रसरूपी पराग की पुनः सृष्टि हो, जिसकी भिक्षा माँगकर उसकी लाली (प्रसन्नता) पुनः लौट आये। नव-ज्योति विजयिनी हो। प्राची के अरुण मुकुर में वह प्रिय का प्रतिबिम्ब देखे। कुछ रेखाओं में उलझा हुआ प्रिय का प्रतिबिम्ब उसे कितना आकर्षक जान पड़ेगा। उसमें स्त्रियों और बालकों की स्वाभाविक सुन्दरता होगी। लज्जाशीला वधू के मुख के समान उसे देखकर कवि-हृदय खुल जायगा। उस सौंदर्यमयी प्रतिमा से अनन्त यौवन-मधु बरसेगा। कवि आँखों की तारिकाओं से उसे निहारकर हृदय में उसका अभिषेक करेगा। उसकी वेदना कम होगी और वह सहृदय बनेगा। वह छवि और कवि सखा बनकर जीवन-पथ पर अग्रसर होंगे। इस अंश में 'प्रिय से पुनः जागने की प्रार्थना' है।

सोलहवें अंश (पृ० ७० से ७४ तक) में १२ छन्द हैं। कवि-जीवन का बहुत अंश विस्मृति में व्यतीत हो गया। उसके नाम से उठी हुई करुणा-तरंगें दूर-दूर तक व्याप्त होंगी और उसके प्रिय को भी प्रभावित करेंगी। जिस शीतलता (कोमल भावना) का स्पर्श पाकर आँखों के कोनों में जल भर आता है, उसी की कवि की आँखों को प्यास है। उसके हृदय के उच्छ्वास,

जो सदा पलकों की सुख-छाया में सोते रहते हैं, मधुमाया में फिर उठते है— फिर नूतन आशा का संचार करते है। आशा है कि अश्रु-वर्षा के बाद कवि और उसके प्रिय का जीवन सुख से भर जाएगा। जैसे सरिता के तट पर जो जहाँ खड़ा रहता है वहीं चन्द्र का आलोक और सरिता का प्रवाह सामने देखता है, वैसे ही प्रिय का जागरण हर तरह का आनन्द देकर आँसुओं का सारा दुख हर लेता है। प्रिय का म श्रान् होने पर कवि की आँखरूपी छोटी सीपी मे समुद्र ही भर जायगा और आँसुओं में भी आनन्द भर जायगा। अपने जीवन-समुद्र के अँधेरे में प्रिय की ज्योति आकाश-दीप की भाँति चमकेगी। प्रिय को पाकर मन की पीड़ाएँ आनन्द मे बदल जाएँगी। प्रिय उसे अमरबेलि की भाँति आच्छादित कर उसके जीवन का एकाकीपन सदैव के लिए दूर कर देंगे। प्रिय के जागने पर पवित्र प्रभात होगा और सब पाप पुण्य मे बदल जावेंगे। 'पुनर्मिलन से आनन्द-प्राप्ति की आशा' ही इन छन्दों का भाव है।

अन्तिम अंग में १८ छन्द है। नूतन आशाओं के संचार के बाद वेदना पुनः सामने आती है। कवि उसको एकाएक पहचान नहीं पाता। इस चिर-सहचरी को कवि कुछ क्षण बाद ही पहचान लेता है। वेदना रूपी चिड़िया उसके शान्त-हृदय में पुनः हूक उठाती है। कवि वेदना से पूछता है कि उसने सूने आकाश में क्या देखा—वह कहाँ-कहाँ घूमकर आई? वेदना ने, रात में जब सुखी हृदय आनन्द मे सोते हैं, दुःखित हृदय कमलों का मुरझाना देखा है। उसने हृदय में समुद्र-जैसा तूफान और घोर निराशा

देखी है। उसने पर्वत-मालाओं की भाँति चुपचाप वेदना सहन करनेवाले प्राणी देखे हैं, जिनके जीवन में आनन्द कभी नहीं आया। उसने निराश-प्रणयी देखे हैं, जिनके प्रिय मधुकर की भाँति मनमानी कर जिधर जी में आया चले गये हैं। उन निराशा-भरे नयनों को भी देखा है, जिनके आँसू तक सूख गये है और जहाँ चिर अभाव की वेदना व्याप्त है। उन निराश-प्रेमियों को देखा है, जो सूखी नदियों की भाँति आनन्दरहित होकर अनीप करुण-कहानी कहने में लीन हैं। निर्जन-कुटीर में जलते हुए दीपक के, तेल चुक जाने पर, प्रभात में बुझ जाने के समान आशा से भरे प्रेमियों के हृदयों का प्रतीक्षा में आनन्दित हो-होकर प्रभात में चूर-चूर हो जाना देखा है। अब यह अनुभवी वेदना सबका सार लेकर उसके सुखरहित जीवन में प्रभात के ओसकणों की भाँति आँसू बनकर समस्त संसार को अपना घर मानकर बरस पड़े। सर्वव्यापी "वेदना" का ही इस में चित्रण है।

इन १७ अंशों के शीर्षकों के संकलन से इस कविता-पुस्तिका का विषय निर्धारित करना कुछ सुगम हो जाता है। १. वेदना के कारणो को खोज २. अतीत की स्मृतियों से उत्पन्न हुई वेदना ३ वर्तमान वियोग और अतीत का संयोग ४. प्रिय के सौंदर्य का आकर्षण ५. विलासमय जीवन का वैभव ६. विरह दशा ७. विरह में आँसू बहाना ८. प्रिय की स्मृति ९. वर्तमान दशा पर सन्तोष १०. सुख का प्रिय के साथ चला जाना ११. आशा और निराशा १२. विस्मृति द्वारा शान्ति-

लाभ की आशा १४. हृदय की ज्वाला १५. प्रिय से पुनः जागने की प्रार्थना १६. पुनर्मिलन से आनन्द-प्राप्ति की आशा १७. सर्वव्यापी वेदना। कवि को अपने प्रिय से बिछुडने का दुःख है। पहले वह वेदना का अनुभव कर उसके कारणों को खोज करता है। वह जान लेता है कि यह दुःख पुरानी बातो की याद आने के कारण है। जितना पहले सुख था, अब उतना ही दुःख है। उसे प्रिय की सुन्दरता ने आकर्षित किया था। वह उस सुख में तल्लीन था। पर प्रिय एकाएक उससे बिछड़ गये अब वेदना के आँसू बहाना, प्रिय की याद करना, यही सम्भव है। कवि अपनी इसी दशा पर सन्तोष करने को तैयार है, क्योंकि उसका सुख तो प्रिय लेकर चले गये अब आशा और निराशा के चक्कर में पड़कर वह दूर-दूर तक ससार में व्याप्त दुःख का अनुभव करता है और 'आँसू' को उसका सार समझ-कर उनके बरसने की अभिलाषा करता है।

अब प्रश्न यह है कि क्या यह कवि की आत्म- कहानी है, अथवा उसने संसार के बहुत-से व्यक्तियों को इसी प्रकार दुःख झेलते देखकर उनकी दशा का चित्रण उत्तम पुरुष में किया है। इसके अतिरिक्त "कहीं-कहीं कवि के आँसू अज्ञात प्रियतम" के लिए बहते जान पड़ते है।" समस्त पुस्तिका में एकता स्थापित करने क लिए 'अज्ञात प्रियतम' की कल्पना को अधिक महत्त्व नहीं दिया जा सकता। स्वर्गीय पं० रामचन्द्रजी शुक्ल ने तो स्पष्ट रूप से लिखा है कि "वेदना की कोई न एक निर्दिष्ट भूमि होने से सारी पुस्तक का कोई एक समन्वित प्रभाव नहीं निष्पन्न होता।" वास्तविक बात यह है कि जिस समय कवि इस काव्य

की रचना कर रहा था, उस समय श्रंगार-रस की रचनाओं के विरुद्ध एक घोर आन्दोलन चालू था। सभी साहित्यिक किसी नवीन वस्तु की चाह में थे। 'गोपिन के अँसुआन के नीर' से पनार नारे' और 'भारे जलाहल' बन चुके थे। वियोग की अग्नि मे लूहें चल चुकी थीं। हाथ में भात पक चुके थे, भूमि दरक चुकी थी और विरह-वर्णन के अनेक स्वरूप स्व० पं० पद्मसिंह शर्मा और 'देव और बिहारी' के आन्दोलन ने सामने ला दिय थे। अब किसी कवि के लिए बिना नई दिशा में पग उठाये यश का लाभ कठिन था। पुरानी परिपाटी का अनुकरण भी खतरे से खाली नथा। इसीलिए कवि की मौलिकता ने उसे नया माग सुझाया। युवावस्था में जो अनुभव हुए उनको व्यक्त करने के लिए अब स्पष्टवाद का आश्रय लेना उचित न था। कवि ने अपनी शृंगारिक उक्तियाँ इसी कारण एसे माध्यम द्वारा व्यक्त कीं, जिसे कोई समझे और कोई न समझे। कोई उसका एक अर्थ लगाये और कोई दूसरा। 'आँसू' के छन्दों की पंक्तियाँ भावों से ओत-प्रोत हैं और जितनी गम्भीर दृष्टि से देखा जाए, उनका अधिक स्पष्टीकरण होता है। मगर समस्त पुस्तिका को एकता के सूत्र में पिरोना फिर भी कठिन होता है। अधिक स्पष्टीकरण इस कठिनाई को और बढ़ा देता है।

समस्त 'आँसू पुस्तिका में विरह-वर्णन है, पर स्पष्ट ही उसमें प्रसाद-गुण का अभाव है, जिसके लिए शुक्ल जी जैसे विद्वान् भी एक मत निर्धारित करने में संकोच करते हैं, उसके लिए साधारण पाठक को कितनी कठिनाई हो सकती है। उसके लिए तो 'आँसू' की एक पंक्ति ही सारा अध्ययन समाप्त कर देती है।

अवकाश भला है किनको
सुनने को करुण कथाएँ।

प्रसादजी का विरह-वर्णन कितना मौलिक, कितन क्लिष्ट कितना चमत्कारपूर्ण है, इन प्रश्नों पर अन्य लेखों में विचार किया जायगा।

कविवर प्रसाद के विचार

प्रसाद के अनुसार काव्य का अध्ययन इस प्रकार हो सकेगा।

१. कवि की मूल अनुभूति की खोज
२. देखना कि उन में संकल्पात्मकता कितनी है, मौलिकता कितनी है, तीव्रता कितनी है।
३. काव्य शरीर की जाँच
   (क) अलंकार व्यंजना, वक्रोक्ति आदि का प्रयोग
   (ख) विशिष्ट पद-रचना
४. देखना कि काव्य-शरीर मूल अनुभूति को सुन्दरता से वहन करता है या नहीं
५. काव्य में रसात्मकता का अनुभव
६. प्रतीकों का प्रयोग

प्रसाद ने हिन्दी काव्य धारा का विश्वलेषण इस प्रकार किया है :—

१. आदर्शवादी साहित्य
२. रहस्यात्मक साहित्य
३. शास्त्रवादी साहित्य
४. यथार्थवादी
५. नूतन रहस्यवादी

प्रसाद के 'आंसू' की मौलिकता

'प्रसाद' के आलोचक "आँसू" को बहुत महत्त्व- पूर्ण स्थान देते हैं। उनका मत है कि इस पुस्तिका ने हिन्दी काव्य-क्षेत्र में क्रान्त उपस्थित कर दी, क्योंकि हिन्दी साहित्य में 'छायावाद' का महत्त्व स्थापित करने वाली यह प्रथम पुस्तिका है। 'प्रसाद' को कवि-रूप में अध्ययन करने वाले "झरना" "आँसू" "लहर" और "कामायनी" को कवि के उत्तरोत्तर विकास की चार सीढ़ियाँ मानते हैं। हमें देखना चाहिए कि "आँसू" के द्वारा प्रसाद ने कौन से नवीन तत्त्व हिन्दी काव्य-साहित्य को दिये।

'आँसू' का अध्ययन करने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि उसमें कवि ने विरह का चित्र खींचा है। हिन्दी साहित्य में विरह-वर्णन की तो कमी न थी और न इस दृष्टि से इस पुस्तिका को कोई विशेष महत्त्व ही दिया जा सकता है। हमारे आचार्यों ने वियोग की ऐसी विषद व्याख्या की है तथा कवियों ने उसका वर्णन इतने स्वरूपों में किया है कि नवीन कवि के लिए वे बहुत कम क्षेत्र अछूता छोड़ गये हैं। साहित्य-दर्पण के अनुसार वियोग की परिभाषा यह है :—

'जहाँ रति का भाव प्रगाढ़ रूप से हो, तथा अभीष्ट न प्राप्त हो, वह विप्रलम्भ (वियोग) कहलाता है। वह पूर्वानुराग, मान,

प्रवास, और करुणात्मक चार प्रकार का होता है।"

हिन्दी कवियों ने इन चारों ही प्रकार के विरहों का वर्णन किया है और उसके असंख्य चित्र ब्रज भाषा काव्य में मिलते हैं। प्रसाद का विरह-वर्णन इन वर्णनों से बहुत भिन्न नहीं है; परन्तु वर्णन की शैली में भिन्नता है। पुराने कवि राधा और कृष्ण का नाम ले कर अथवा किसी नायक-नायिका का कोई चित्र सामने उपस्थित करके फिर उनकी मनोदशा चित्रित करते थे। "आँसू" के कवि ने स्वयं को विरह-पीड़ित मान कर अपनी मनोदशा चित्रित की है। इसमें बहुत अंशों में कवि पर अंग्रेजी की वर्णन-शैली का प्रभाव है। शेक्सपियर की चतुर्दशपदियों (Sonnets) तथा टेनीसन के 'इन मेमोरियम' में जो स्वयं को नायक के रूप में चित्रित कर अन्तर्मुखी (Subjective) रचना की प्रणाली विद्यमान है, वही हम 'आँसू' में भी देखते हैं।

प्रसाद ने 'आँसू' में जिस वियोग का चित्र खींचा है, वह करुणात्मक वियोग के अन्तर्गत है। इसका परिचय देते हुए आचार्य गुलाबराय जी नवरस में लिखते हैं:- "यह वियोग की अन्तिम अवस्था है। जहाँ पर मिलन की आशा नहीं रहती, वहाँ पर विरह करुणा में परिणत हो जाता है; किन्तु जहाँ पर करुणा के साथ मिलन की असम्भव आशा रहते हुए भी रति का भाव वर्तमान रहता है, वहाँ पर करुणात्मक वियोग-शृंगार होता है। ...बहुत से आचार्यों का यह मत है कि मरण के पश्चात् भी जब किसी कारणवश सशरीर मिलने की आशा लगी रहती है, तब करुणात्मक

वियोग शृंगार होता है।" कविवर प्रसाद इन परिभाषाओं से कुछ ऊँचा उठ गये हैं। उन्होंने 'आँसू' में पुनर्मिलन की जो आशा व्यक्त की है, उसमें सशरीर मिलन को अधिक महत्त्व नहीं दिया। वे आत्मा के आत्मा से मिलन को अधिक महत्त्वपूर्ण मानते हैं। प्राचीनों से यह अन्तर ही उन्हें छायावादी और रहस्यवादी बना देता है।

चमकूँगा धूल-कणों में
सौरभ हो उड़ जाऊँगा
पाऊँगा कहीं तुम्हें जो
ग्रह-पथ में टकराऊँगा।

इस शिथिल आह से खिंच कर
तुम आओगे-आओगे
इस बढ़ी व्यथा को मेरी
रो-रो कर अपनाओगे।

परन्तु इस आशा में भी सुख-भोग की प्रधानता न हो कर साहनभूतिमय करुणा की ही प्रधानता है।

आचार्यों ने विरह की दश दशाओं का वर्णन किया है: (१) अभिलाषा (२) चिन्ता (३) गुण-कथन (४) स्मृति (५) उद्वेग (६) प्रलाप (७) उन्माद (८) व्याधि (९) जड़ना (१०) मरण "आँसू" के अधिकांश छन्द इन्ही दशाओं में से किसी न किसी के अन्तर्गत आ जाते हैं। परन्तु इन दशाओं को उपस्थित करने

में प्रसाद जी ने प्राचीन कवियों की परिपाटी में कुछ हेर-फेर किया है। जहाँ परंपरा को अपनाने वाले कवि प्रत्येक चित्र स्पष्ट और सम्पूर्ण रूप में सामने लाते हैं, वहाँ प्रसाद के काव्य में केवल संकेत मिलते हैं। प्रसाद द्वारा चित्रित विरह की इन दशाओं का आभास हम कुछ पंक्तियों में देख सकते हैं। विरह की प्रथम दशा अभिलाषा का चित्रण इन पंक्तियों में देखिए :—

अभिलाषा

अभिलाषाओं की करवट
फिर सुप्त-व्यथा का जगना

कामना-कला की विकसी
कमनीय मूर्ति बन तेरी
खिचती है हृदय-पटल पर
अभिलाषा बन कर मेरी।

वह मेरी प्रेम विहँसते
जागो मेरे जीवन में
फिर मधुर भावनाओं का
कलरव हो इस जीवन में।

अभिलाषा के मानस में
सरसिज सी आँखें खोलो
मधुपों से मधु गुंजारो
कलरव से फिर कुछ बोलो।

प्राची के अरुण-मुकुर में
सुन्दर प्रतिबिम्ब तुम्हारा
उस अलस उषा मे देखूं
अपनी आँखों का तारा

प्राचीन कवि अभिलाषा में मिलन की इच्छा प्रधान मान कर उसी का चित्र उपस्थित करते थे।

काव्य-प्रेमियों के लिए ये चित्र इतने परिचित हो गये कि आधुनिक कवि अब केवल उसका नाम लेकर ही सन्तोष कर लेता है, अब 'अभिलाषा' करवट बदलती है तथा कामना कला बन कर विकसती है। इन शब्दों म ही मिलनाभिलाषा के विभिन्न रूपों का आभास है।

परन्तु प्रसाद की अभिलाषा यही समाप्त नहीं हो जाती। वे कुछ आगे बढ़ कर लोक-कल्याण की भावना अपना लेते हैं तथा अपनी अभिलाषा का रूप बदल देते है। वे दुःख और सुख दोनों को समान रूप में देखने की अभिलाषा रखते हैं :—

हो उदासीन दोनों से
दुख सुख से मेल कराये
ममता की हानि उठा कर
दो रूठे हुए मनायें।

"ओड आन सॉलीट्यूड" के कवि की भाँति उन्हें भी अपने

दुःखित जीवन को ही सुखी समझ लेने की साध है :—

But the sea-fowl is gone to her nest,
The beast is laid down in his lair;

Even here is a season of rest
And I to my cabin repair.

There's mercy in every place,
And mercy, encouraging thought !
Gives even affiiction a grace,
And reconciles man to his lot"

कविवर प्रसाद को उस आत्मा से मिलन की भी चाह है, जहाँ फिर वियोग होता ही न हो :—

तेरा आलिंगन कोमल
मृदु अमर बेलि सा फैले
धरनी के इस बंधन में
जीवन हो न हो अकेले ।

कबीर ने भी इसी प्रकार की भावना व्यक्त की है :—

"चलु चकई वा देश कौं, जहाँ बिछोह न होइ ।

जग की मंगल-कामना के लिए अपने सार-गर्भित आँसू बरसाने की अभिलाषा में प्रसाद जी का नयापन है :—

सब का निचोड़ ले कर तुम
सुख से सूखे जीवन में
बरसो प्रभात हिमकर सा
आँसू इस विश्व-सदन में।

इस प्रकार प्रसाद के विरह में अभिलाषाएँ कुछ पुरानी तथा कुछ नवीन रूप मे दिखाई देती हैं। इस नूतन भावना का आदि श्रोत कविवर का वह संस्कृत-अध्ययन था, जिसके द्वारा उन्होंने उपनिषदों की आत्मा को पहचान कर अपना लिया।

वियोग की दूसरी अवस्था 'चिन्ता' है। इसमें दुःख की मात्रा बढ़ जाती है। प्रिय के चिन्तन द्वारा दुःख की अभिवृद्धि का चित्रण आँसू में भी विद्यमान् है:-

क्यों व्यथित व्योम-गंगा सी
छिटका कर दोनों छोरें
चेतना तरंगिनि मेरी
लेती हैं मृदुल हिलोरें।

सुख आहत शान्त उमंगें
बेगार साँस ढोने में;
यह हृदय समाधि बना है,
रोती करुणा कोने में।

विस्मृति है, मदकता है
मूर्च्छना भरी है, मन में।

हिम-शीतल प्रणय अनल बन
अब लगा विरह से जलने ।

हम व्याकुल पड़े विलखते
थे उतरते हुए नशे से ।

मैं व्यर्थ प्रतीक्षा ले कर
गिनता अम्बर के तारे ।

डूबा है हृदय मरुस्थल,
आँसू-नद उमड रहा है ।

इन पंक्तियों में वियोग-जनित दुःख के अनेक चित्र विद्यमान हैं । प्राचीन कवियों ने भी वियोग की ज्वाला, और आँसुओं का वर्णन किया है, परन्तु कविवर प्रसाद का वर्णन स्वानुभूतिमय है तथा अधिक समवेदना उत्पन्न करता है । 'प्रसाद' का आँसू-नद में हृदय डुबाना साभिप्राय है । कविवर तोष का गोपियों के अश्रु से नद और जलाहल बनाना हास्यास्पद है । व्रज-भाषा के कवि दूसरों की दशा का वर्णन करते थे, परन्तु यहाँ स्वयं अपना दुःख चित्रित है ।

वियोग की तीसरी दशा गुण-कथन है । जहाँ मिलन की इच्छा पूर्ण नहीं होती, वहाँ प्रियतम अथवा प्रिया के गुणों की चर्चा से ही थोड़ा संतोष कर लिया जाता है । प्रसाद ने भी अपनी प्रिया के गुण और रूप का वर्णन किया है । कभी उन्हें इस

वर्णन से सान्त्वना मिलती है तथा कभी हृदय का असंतोष और भी बढ़ गया है।

मादक थी मोहमयी थी
मन बहलाने की क्रीड़ा।

तुम सत्य रहे चिर सुन्दर
मेरे इस मिथ्या जग के
थे केवल जीवन संगी
कल्याण कलित इस मग के

मैं अपलक इन नयनों से
निरखा करता उस छवि को।

घन में सुन्दर बिजली-सी
बिजली में चपल चमक-सी
आँखों में काली पुतली
पुतली में श्याम झलक-सी।
प्रतिमा में सजीवता-सी,
बस गई सुछवि आँखों में।
थी एक लकीर हृदय में
जो अलग रही लाखों में।

माना कि रूप सीमा है
सुन्दर! तव चिर-यौवन में

पर समा गये थे, मेरे
मन के निस्सीम गगन मे !
लावण्य-शैल राई सा
जिस पर वारी बलिहारी
उस कमनीयता कला की
सुषमा थी प्यारी-प्यारी

बाँधा था विधु को किसने
इन काली जंजीरों से
मणि वाले फणियों का मुख
क्यों भरा हुआ हीरों से ?

छलना थी, तब भी मेरा
उसमे विश्वास घना था
उस माया की छाया में
कुछ सच्चा स्वय बना था।

इतने उदाहरणों से स्पष्ट है कि कविवर प्रसाद ने अपनी प्रिया के गुण कथन में किसी प्रकार की कमी नहीं की है।

वियोग की चौथी दशा स्मृति है। प्रसाद के आँसू में इसका भी विशेष महत्त्व है :—

बस गई एक बस्ती है,
स्मृतियों की इसी हृदय में।

नक्षत्र-लोक फला है,
जैसे इस नील निलय मे।

जो घन भूत पीड़ा थी
मस्तक मे स्मृति-सी छाई।
दुर्दिन में आँसू बन कर
वह आज बरसने आई।

मकरन्द मेघ-माला सी
वह स्मृति मदमाती आती।
इस हृदय विपिन की कलिका
जिससे रस से मुसकाती।

है हृदय शिशिर कण पूरित
मधु-वर्षा से शशि तेरी
मन मन्दिर पर बरसाता
कोई मुक्ता की ढेरी।

वियोग की पाँचवी दशा उद्वेग है। इसमे सुखदायक वस्तु भी दुख-दायक प्रतीत होती है। ब्रज-भाषा के कवियो ने चन्द्र को 'दाहक' तथा कार्तिक का राति को जेठ की दुपहरी' के रूप मे दिखलाया है।

हौं ही बौरी विरह वश, कै बौरो सब गाम।
का जानौं ये कहत हैं, ससिहि शीतकर नाम॥

—बिहारी

'आँसू' में भी उद्वग के कुछ चित्र हैं :—

चातक की चकित पुकारें
श्यामा ध्वनि सरल रसीली
मेरी करुणार्द्र कथा की
टुकडी आँसू से गीली।

व्याकुल उस मधु सौरभ स
मलयानिल धीरे-धीरे।
निश्वास छोड़ जाता है,
अब विरह-तरंगिनि तीरे।।

विरह की छठवी दशा प्रलाप है। ब्रज-भाषा के कवि नायक अथवा नायिका को विरह-पीड़ित दिखा कर उसके मुख से असम्बद्ध बातें कहलाते थे। यहाँ कवि स्वयं ही विरह-पीड़ित नायक है। अतएव समस्त "आँसू" पुस्तिका ही प्रलाप के अन्तर्गत आ जाती है। इसमें प्रिया का कहीं पुल्लिग, कहीं स्त्री-लिग में कथन, एक बात कहते-कहते एक एक बहुत ही दूर की असम्बन्धित बात पर पहुँच जाना, किसी भी चित्र को पूरा न सजा कर, केवल संकेत मात्र से उसकी चर्चा करके छोड़ देना-ये सब प्रलाप के ही प्रमाण हैं; परन्तु साथ ही साथ इसी प्रलाप में बहुत सी बातें बड़ी मार्के की भी कही गयी हैं, जो समस्त पुस्तिका के असम्बद्ध प्रलाप माने जाने में बाधक हैं।

हम कुछ पंक्तियाँ अवश्य पा सकते है, जिनमे विरह व्यथित कवि का प्रलाप स्पष्ट है। प्रलाप में बुद्धि का ह्रास हो जाता है तथा विरही स्वय को अपना प्रिय समझ कर बात कहता है।

प्रसाद जी कहते हैं —

> विभ्रम मदिरा मे उठ कर
> आओ तन्मय अन्तर मे
> पाओगे कुछ न टटोले
> अपने बिन सूने घर मे।

'उन्माद' वियोग की सातवीं दशा है। वही बातें जो प्रलाप-कथन द्वारा स्पष्ट होती है-इसमे क्रियायों द्वारा व्यक्त की जाती है। कविवर प्रसाद का विरह-जन्य उन्माद तो पुस्तक प्रणयन तक ही सीमित है। 'आँसू' में उन्माद की झलक कुछ पंक्तियों मे मिलती है :—

> हम व्याकुल पडे बिलखते,
> थे उतरे हुए नशे से।

> इस गगन यूथिका बन मे
> तारे जूही से खिलते।
> सित शतदल से शशि तुम क्यों
> उनमें जाकर हो मिलते

> उच्छवास और आँसू में
> विश्राम थका सोता है।

मेरी आहों में जागो
सुस्मिति मे सोने वाले।

प्राचीन कवि दूसरों के उन्माद का वर्णन करते थे। क्रियाएँ वाह्य वस्तु हैं—अतएव दूसरे लोग ही उन्हें अच्छी तरह देख सकते हैं। स्वयं अपनी क्रियाओं मे उन्माद देखना सभव नहीं है। कम से कम जान-बूझकर उनका वर्णन तो नही किया जा सकता। पुराने कवि तो लिख सकते थ :—

मरिबे को साहस कियो, उठी विरह की पीर।
दौरति हैं समुहें ससी, सरसिज, सुमन, समीर॥

परन्तु कविवर प्रसाद क्या करते ? वे केवल उन्माद को संकेत मात्र करके संतोष कर लेते हैं, तथा उसके साथ 'उनका' विशेषण भी उन्हें जोड़ना पड़ता है :—

निशि, सो जावें जब उर मे
य हृदय व्यथा आभारी।
उनका उन्माद सुनहला
सहला देना सुखकारी॥

वियोग की आठवीं दशा व्याधि है। इसमे मानसिक उद्वेग शरीर पर अपना पूरा अधिकार जमा लेता है। "अंग का वर्ण विवर्ण हो जाता है; श्वास को तीव्रता होती है, और प्रत्यक्ष में व्याधि के लक्षण प्रतीत होने लगते हैं।" यथा :—

पग परत हैं आलस भरे, छवि हीन सकल सरीर है।

अथवा

फैलति सारी देह में, लगत अगनि अंग लागि।
हौंका सो धधकति हिये, बिना धुआँ की आगि॥

प्रसाद के "आँसू" में व्याधि व्यापक तत्त्व है। प्रारंभ में ही कवि कहता है :—

इस करुणा-कलित हृदय में
अब विकल रागिनी बजती
क्यों हाहाकार स्वरों में
वेदना असीम गरजती ?

और भी कुछ स्थलों पर व्याधि का चित्रण है :—

अब हृदय हिला देती है
वह मधुर प्रेम की पीड़ा।

तब भी तुम सतत अकेली
जलती हो मेरी ज्वाला।

फनिल उछ्वास हृदय के
उठते फिर मधु-माया में।

वियोग की नवम दशा 'जड़ता' है। इसमें उद्वेग इतना बढ़

जाता है कि सुख-दुख समान प्रतीत होने लगते हैं। प्रियतम से मिलन की आशा न रहने पर दुख को ही सुख समझ लेना इसका मुख्य तत्त्व है। 'आँसू' में भी हम इसका आभास पाते हैं :—

इस विकल वेदना को ले
किसने सुख को ललकारा
वह एक अबोध अकिंचन
केवल चैतन्य हमारा ।

विस्मृति है, मादकता है,
मूर्च्छना भरी है मन में ।

मानव जीवन वेदी पर,
परिणय हो विरह मिलन का
सुख-दुख दोनों नाचेंगे,
यह खेल आँख का मन का ।

सुख मान लिया करता था,
जिसका था दुःख जीवन में ।

यह हँसी और यह आँसू,
घुलने दे मिल जाने दे ।

है पड़ी हुई मुँह ढँक कर
मन की जितनी पीड़ायें ।

वियोग की दसवीं और अंतिम दशा 'मरण' है। इसमें प्रायः मरण-तुल्य दशा का वर्णन कर दिया जाता है, अथवा मरने

की आकांक्षा दिखायी जाती है। कहीं-कहीं मरण दिखा कर आगामी जीवन में भेंट की आशा द्वारा रस-विच्छेद नही होने दिया जाता। 'आँसू' की निम्नांकित पंक्तियो में हमे इसी दशा का आभास मिलता है:—

इस यान्त्रिक जीवन में क्या
ऐसी भी कोई क्षमता—
जगती थी ज्योति भरी सी
तेरी सजीवता ममता ?

जीवन मे कोई क्षमता न थी; वह समाप्त हो जाता परन्तु तेरी ममता ने उसको सजीव बना रखा है।

जीवन मे मृत्यु बसी है
जैसे बिजली हो घन मे।

जिसके आगे पुलकित हो
जीवन है सिसकी भरता।
हाँ मृत्य नृत्य करती है
मुसक्याती खडी अमरता।

मेरे जीवन का जलनिधि
बन अधकार ऊर्मिल हो
आकाश-दीप सा तब वह
तेरा प्रकाश झिलमिल हो।

यहाँ मृत्यु के बाद मिलन की आशा व्यक्त की गयी है :—

सूनी कुटिया कोने मे
रजनी भर जलते जाना

लघु स्नेह भरे दीपक का
देखा है फिर बुझ जाना।

यहाँ भी दीपक बुझने मे मृत्य की छाया विद्यमान है।

हिन्दी की रीतिकालीन कविता में आँसू एक अनुभाव के रूप मे ग्रहण किये गये हैं। साहित्य में इसके अनेक चित्र विद्यमान है। महकवि देव ने लिखा है:—

बड़े बड़ नैननु सों, बड़े बड़े आँसू ढरि,

गोरो गोरो मुख आजु ओरो से बिलानो जात ॥

प्रसाद के आँसू भी अनुभाव के रूप मे बहे हैं —

घुल-घुल कर वह रह जाते
आँसू करुणा के कण से।

मेरी करुणार्द्र कथा की
टुकडी आँसू से गीली।

छूँछा बादल बन आया
मे प्रेम-प्रभात गगन से।

मन-मन्दिर पर बरसाता

मैं सिहर उठा करता हूँ
बरसा कर आँसू धारा ।

डूबा है हृदय-मरुस्थल
आँसू-नद उमड़ रहा है ।

रो-रो कर सिसक-सिसक कर
कहता मैं करुण कहानी ।

अपने आँसू की अंजलि
आँसू में भर क्यों पीता ।

बह हँसी और यह आँसू
घुलने दे मिल जाने दे ।

जल भर लाते हैं जिसको
छूकर नयनों के कोने ।

आँसू-वर्षा से सिंच कर
दोनों ही कूल हरा हो ।

कविवर सूरदास जी कहते हैं :—

ब्रज तें द्वै रितु पै न गई ।

ग्रीषम अरु पावस प्रवीन अति तुम बिनु अधिक भई ।
उरध उसांस समीर नैन-घन सब जल-जोग जुरे ।।

कविवर प्रसाद नें यह जल-योग दूसरी भाँति जोड़ा है:—

जो घनीभूत पीड़ा थी
मस्तक में स्मृति सी छाई ।
दुर्दिन में आँसू बन कर,
वह आज बरसने आई ।।

इन अनुभाव-प्रदर्शक आँसुओं के अतिरिक्त प्रसादजी ने एक कल्याणकारी अश्रु भी तैयार किया है, जो समस्त वेदनाओं का सार है । प्रसाद जी की यह सूझ सर्वथा नवीन है :—

सब का निचोड़ लेकर तुम
सुख से सूखे जीवन में
बरसो प्रभात हिम-कण सा
आँसू इस विश्व-सदन में ।

स्मृति के अंतर्गत कवि वर प्रसाद ने 'नख-शिख' तथा संयोग शृंगार का भी वर्णन किया है, तथा इसमें उन्होंने रीति-काव्य का अनुकरण किया है । रीति-काव्य से अनभिज्ञ पाठकों के लिए इन स्थलों का वास्तविक अर्थ समझना कठिन है :—

बाँधा था विधु को किसने
इन काली जंजीरों में ।

इसके लिए "मुखाभा चन्दा में चकित हरिणी में दृग मिलें" का परिज्ञान आवश्यक है ।

संयोग के इस चित्र में जो भाव है, वह भी रीति-काव्य का ही स्मरण दिलाता है—

थक जाती थी सुख-रजनी
मुख-चन्द्र हृदय में होता।
श्रम-सीकर सदृश नखत से
अम्बर-पट भीगा होता ।

इन पंक्तियों को पढ़ते समय अँग्रेजी कवि मौरिस की कुछ पंक्तियाँ स्मरण हो आती हैं—"तुम नहीं जानते कि रात होने पर मेरी प्रियतमा मेरे निकट आ जाती है, आपस में मधुर संभाषण और क्षमा-प्रदान होता है। आधी-रात के अंधकार में उसके चुम्बन मेरे शरीर में स्फूर्ति उत्पन्न कर देते हैं।"

कविवर साद पर बंगाल के काव्य का भी कुछ प्रभाव पड़ा है। कुछ पंक्तियों की तुलना से यह बात स्पष्ट हो सकती है।

के जाने खाइले गरल हइबे पाइबे एतेक दुखे ।

चण्डीदास

(मुझे क्या पता था कि उसका रस-पान करने पर वह विष का काम करेगा, और उसके कारण मुझे इतना क्लेश उठाना पड़ेगा।)

विष-प्याली जो पी ली थी
वह मदिरा बनी नयन में। —प्रसाद

प्रसाद

चण्डीदास ने रस को विष का काम करते हुए दिखलाया है। प्रसाद रस को विष मान कर ही चले हैं तथा उसके द्वारा उत्पन्न मादकता ने उसे मदिरा में बदल दिया है।

आज के सखि पड़चे मने सेइ अतीतेर सन्ध्यावेला,
आकाश भरे उठत तारा, फुटत हास चाँदेर मुखे
हातेर भितर हातटि धरा, कतइ कथा मनेर सुखें

विश्व छिल सबुज तखन,
आकाश छिल सोणाय आँका।

माझ खाने ते सठल थे झड घूर्णी वातास माथास घिरे तलिये दिले कोन अतले मानस–सरेर पद्मिनी रे–

अतीत एखन शुधइ अतीत नाइले मनेर उद्दीपना बुकेर तलि नूपुर तोमार शोणित श्रांते याय ये चेना।
मिथ्या सखि जागोतो आज अतीते दिनेर अतीत कथा।

हयत ताते पावे ना सुख हयत मने पावे व्यथा।

—इन्दिरा देवी

(सखी, आज उस अतीत की संध्या याद पड़ती है–आकाश

को भरते हुए तारे उगते हैं, चाँद के मुँह में हँसी फूटती है; उनका सुख में हाथ में हाथ डालना आदि कितनी ही बात याद पड़ती है। ससार उस समय हरा था और आकाश स्वर्ण से अंकित। बीच से जो झड़ उठी, घूर्णी हवा में माथा घेर कर उसने मान सरोवर की पद्मिनी को किस अतल मे डुबा दिया।....अब अतीत केवल अतीत है। वह उद्दीपन अब नहीं रहा। हृदय के तल मे रक्त की धारा में तुम्हारा नूपुर अभी भी जान पड़ता है। सखि, अब अतीत की भूला बातें जगाना व्यर्थ है। उससे शायद सुख न मिलेगा; दुःख ही मिलेगा।)

प्रसाद के 'मधु-राका मुसक्याती थी' में वही भाव है जो 'चाँद के मुँह में हँसी फूटती है' मे है।

हिलते द्रुम-दल कल किसलय
देती गलबाहीं डाली
फूलों का चुम्बन, छिड़ती–
मधुपों की तान निराली।

इन पंक्तियों में हाथ में हाथ डालना तथा उस समय ससार के हरे होने की छाया है।

सोयेगी कभी न वंसी
फिर मिलन-कुञ्ज में मेरे
चाँदनी शिथिल अलसाई
सुख के सपनों से मेरे।

इन पंक्तियों में 'अतीत केवल अतीत है' का भाव विद्यमान है।

है स्नेह सरोज हमारा
विकसा, मानस में सूखा।

में 'मानसरोवर की पद्मिनी को किस अतल में डुबा दिया का प्रतिबिम्ब है।

मौमाछि देर गुंजरणे
जागल श्याम कुज बने !
स्वप्न सम तार काहिनी,
आज के प्रिये द्विप्रहरे।

—करुणनिदान वन्द्योपाध्याय

(मधु-मक्खियों के गुञ्जन में कुञ्ज वन में श्यामा जाग उठी। प्रिये' आज के दोपहर में उसकी कहानी स्वप्न के समान जान पड़ती है।)

चातक की चकित पुकारें
श्यामा-ध्वनि सरस रसीली।
मेरी करुणार्द्र कथा की
टुकड़ी आँसू से गीली।

—प्रसाद

ए हरि कहलुम तुया पाश लागि
सो अब जीवइ रवहुँ पुन भागी।

—घनश्याम दास

(फिर भी तुम मुझे छोड़ कर भाग गए और मैं पड़ी रोती रह गयी।)

तुम खिसक गये धीरे से
रोते अब प्राण विकल से।

—प्रसाद

वह मलय मारुत मन्द। झरु माधवी मकरन्द
झरु माधवी मकरन्द सो मत्त मधुकर झङ्कहि।

—घनश्याम दास

मकरन्द भार से दब कर
श्रवणों मे स्वर जा बसते।

—प्रसाद

भौंह कमान घयल तसु आगू
तीख कटाख मदन शर लागू।

—विद्यपति

(भौंहें कमान के समान हैं, उनके सामने पड़ते ही चित घायल हो जाता है। सुन्दरी के तीक्ष्ण कटाक्ष हृदय में काम के बाण से लगते हैं।)

अंकित कर क्षितिज पटी को
तूलिका बरौनी तेरी
कितने घायल हृदयों को
बन जाती चतुर चितेरी ।

—प्रसाद

पूर्णिमा निशीथे यबे दशदिके परिपूर्ण हासि
दूर स्मृति कोथा हते बाजाय ब्याकुल कदा बांशि,
झरे अश्रु-राशि ।

—रवीन्द्रनाथ

(पूर्णिमा के निशीथ मे जब दशों दिशाएँ हँसी से परिपूर्ण रहती हैं, उस समय कहाँ से व्याकुल करनेवाली बाँसुरी पुरानी स्मृति बजा देती है; आँसू झरने लगते हैं ।)

मुरली बजती निर्जन में ।

—प्रसाद

इस निर्जन की मुरली का ठीक तात्पर्य रवीन्द्र के वर्णन को पढ़ कर ही स्पष्ट होता है ।

ननुआ नयनि नलिन जनु अनुपम बङ्क निहारइ थोरा ।
जानि भृङ्गकुल मे खगवर बाँधिल दिठिहु नुकाएल मोरा ।।

—विद्यापति

बाँधा था विधु को किसने
इन काली जजीरों में ।

—प्रसाद

हाओ याय संगे हा ओया हो ये
थाबो मा तोर बुके वे थे—

—रवीन्द्र

(हवा के साथ मिल कर तुम्हारी गोदी से हो कर बहता ाऊँगा ।)

चमकूंगा धूल कणों में
सौरभ हो उड़ जाऊँगा
पाऊँगा कहीं तुम्हें तो
ग्रह-पथ में टकराऊँगा ।

—प्रसाद

शुधु आज के तोमार अदर्शनें
मनेर बने
वसन्त वाय श्वसि लुटाय
तोमाय चेये चेये ।

—दिलीप कुपार

(केवल तुम्हारे न देखने से मन वन में बसन्त वायु निः श्वास फेंकता हुआ तुम्हें ढूँढ़ ढूँढ़ लोट रहता है।)

व्याकुल उस मधु-सौरभ से
मलयानिल धीरे धीरे
निश्वास छोड़ जाता है,
अब बिरह-तरंगिनि तीरे।

—प्रसाद

तुमि रइले याशे निखिल माझे
प्रभात साँझे
कतइ ना सुर बाजत मधुर
दुलत धरा प्रेमे

—दिलीप कुमार

(जब तुम पास रहती हो, निखिल में, भात में और सन्ध्या में कितने ही मधुर सुर बजते हैं, धरा प्रेम से हिला करती है।)

हिलते द्रुम-दल कल किसलय
देती गल बाँही डाली
फूलों का चुम्बन, छिड़ती
मधुपों की तान निराली

मुरली मुखरित होती थी
मुकुलों के अधर बिहँसते
मकरन्द भार से दब कर
श्रवणों में स्वर जा बसते ।

—प्रसाद

छन्द गीतेर आनन्दमय मधुर छाया नटे
जागिए दिन जीवन-वीणाय राग रागिणी तार
मर्म्म माझे मुखर मीडो ना झंकार ।

—नरेन्द्र देव

(आनन्ददायी मधुर छायानट के छन्द और गीतों मे उसकी जीवन रूपी वीणा बज उठती और अतस्तल मे तेज झंकार होने लगती ।)

छायानट छवि पर्दे मे
सम्मोहन वेणु बजाता ।

—प्रसाद

श्री चितरंजन दास की एक रचना है-'स्वर्ग का स्वप्न' । प्रसाद के आँसू के मुख्य तत्त्व उसमें विद्यमान हैं :—

हे सुन्दरि ! सेइ दिन बसन्त भाते .

मन-प्राण-अन्धकरा सुवासित राते
झलसिले आँखि मोर परशिले मन !

हे सुन्दरी ! उस दिन बसन्त के प्रभात में, हृदय और प्राण को अन्धा करने वाली सुवासमय रात्रि में, तुमने मेरी आँखें चमत्कृत कर दीं, मेरे हृदय का स्पर्श किया ।)

मधु-राका मुसक्याती थी
पहले देखा जब तुमको ।

—प्रसाद

और सेइ, सेइ दिन बसन्त बातास
आपन आवेगे पूर्ण निशीथ आकाश
चन्द्रा लोके आलोकित आमार ए मन—
अर्द्ध-निमीलित नेत्रे ह'ल मोर
स्वर्गहते नेमे एले जगतेर घोर
डाकिले स्वर्गेर करे ! गरबी पराण
करिल पूजार लागि पुष्प अर्घ दान ।

(और उस दिन बसन्त की वायु, अपने ही आवेश से पूर्ण निशीथ-कालीन आकाश, चन्द्रालोक में आलोकित सारा भू-भाग स्वप्नालोक से आलोकित मेरा यह मन ! अर्धनिमीलित नेत्रों से जान पड़ा कि मानो तुम स्वर्ग से उतर आयी हो । मेरे अभिमानी प्राण ने पूजा के लिए मानो फूलों का अर्घ्य दान किया ।)

कितनी निर्जन रजनी में
तारों के दीप जलाये ।

स्वर्गगा की धारा मे
उज्जवल उपहार चढ़ाये ॥

गौरव था नीचे आये
प्रियतम मिलने को मेरे ।
मैं इठला उठा अकिंचन
देखे ज्यों स्वप्न सवेरे ॥

—प्रसाद

तार पर गेछे दिवा घेछे निशा कत
गिपाछे स्वपन आय आशा शत-शत
प्रभातेर मुक्त वायु श्रान्त रजनीर
अलस अचलगंध सुरभि समीर !
ए मोर पराण परे ! सुखे दुखे शोके
परिम्लान धरणी मलिन आलोके,
सम्पूर्ण आँधारे कभु, ए मोर जीवन
कतिदीर्घ दिवानिश करेछे थापन !

—चि०

(उसके बाद कितने दिन बीते, कितनी रातें गई। शतशत स्वप्न आये, आशाएँ बीतीं। मेरे प्राणों के ऊपर कितनी प्रभात की मुक्त वायु, श्रान्त रजनी के अलस अंचल के गन्ध से सौरभमय कितने ही समीर चले गये। मेरे इस जीवन ने सुख में दुख में और शोक में परिम्लान पृथ्वी पर मलिन आलोक में कभी-

प्रसाद की मौलिकता पर विचार करते हुए हमें उनके छायावाद पर भी विचार करना पड़ेगा। आधुनिक आलोचक श्री रामरतन भटनागर का मत है कि 'छायावाद' की विभिन्न प्रवृत्तियों को 'प्रसाद' के काव्य और कला के माध्यम से ही समझा जा सकता है। प्राचीन कविता और नवीन कविता में वे कुछ स्पष्ट अन्तर देखते हैं--

१. प्राचीन कविता का विषय धर्म और शृंगार था। नवीन काव्य में धर्म का स्थान गौण है।

२. प्राचीन कवि रस-पुष्टि पर अधिक बल देते थे। अब कवि भाव-प्रकाशन और भाव-पुष्टि को ध्यान में रखते हैं।

३. राम-कृष्ण भक्ति, निर्गुण भक्ति, रीति, शृंगार-ये प्राचीनों के विषय थे। देश-प्रेम, स्वतंत्रता की भावना, समाज सुधार की भावना ये नये विषय हैं।

४. कवियों का प्रकृति के प्रति दृष्टिकोण बदल गया।

५. राम और कृष्ण काव्य में मानवता का अधिक समावेश हुआ।

६. बीसवीं शताब्दी के दशाब्द बीतने पर करुणा की प्रधानता, नैराश्य और नैराश्य-मूलक उत्साह, रहस्यवाद, शृंगारिकता को आवरण में छिपा कर प्रकट करने की चेष्टा (प्रच्छन्न नारी-प्रेम), असंयत कल्पना मानवीय सहानुभूति का

विस्तार—ये नितान्त नवीन प्रवृत्तियाँ हिन्दी-काव्य में आयीं। इन पर युग का प्रभाव था।

नवीन कविता का विकास कुछ अद्भुत ढंग से हुआ था। हमारे कवि हिन्दी को सर्वश्रेष्ठ बनाने के लिए सब कुछ करने को उद्यत थे। उन्हें जहाँ-कहीं जो भी आकर्षक दिखाई देता था—उसे आत्मसात् करके भारती का भंडार भरने में वे संकोच न करते थे। "आँसू" के उदगम का रहस्य भी कुछ इसी प्रकार का है। श्री भटनागर जी के शब्दों में हम कह सकते हैं कि "पहले कुछ कवियों ने चारों तरफ की स्थिति से आँख मूँद ली और अपनी कल्पना द्वारा बताये गये सौन्दर्य, प्रेम और करुणा के लोक में जैसे खो गये। छाया, लहर, स्वप्न, आँसू, अनंग, नक्षत्र जैसे विषयों पर बहुत कुछ लिखा गया परन्तु मनुष्य, उसके सुख-दुःख, आशाकांक्षा की उपेक्षा की गयी। सौंदर्य की अनुभूति के साथ करुणा की अनुभूति भी हुई, क्योंकि उन्होंने देखा कि वे उस सौंदर्य का उपभोग नहीं कर सकते। उन्हें सामाजिक और आर्थिक बंधनों का सामना करना पड़ता था। परन्तु उन्होंने इन क्षेत्रों में अपना क्षोभ एवं विद्रोह प्रकट न कर आध्यात्मिकता का आवरण दे कर हमारे सामने प्रकट किया। प्रसाद के "आँसू", पंत के "उच्छ्वास" रामकुमार और महादेवी के गीतों के पीछे यही मनःस्थिति काम रही है।"

१९१३ ई. के लगभग प्रसाद की 'कानन-कुसुम' और 'इन्दु' (१९०९-१६) की खड़ी बोली की कविताओं से जो एक नयी धारा चली, उसे छायावाद के नाम से पुकारा गया। १९२५ ई. तक 'पल्लव' और 'आँसू' के प्रकाशन के साथ यह धारा स्थायित्व प्राप्त कर चुकी थी। साधारण जनता में यह नाम सामयिक कविता के लिए १९३७ ई. तक चलता रहा। हिन्दी की कविता बँगला की नक़ल समझी जाती थी। 'छायावाद' का नाम दे कर लोग उसकी हँसी उड़ाते थे। धीरे-धीरे छायावाद ने बंगाली भावुकता और रहस्यवादी आध्यात्मिक कविता के अतिरिक्त अनेक अंगों का विकास कर लिया। अब छायावाद की विशेषताएँ ये मानी जाती हैं :—

(१) आत्माभिव्यक्ति की ओर अधिक ध्यान (२) अद्वत की भावना (३) सौंदर्य-सृष्टि—लौकिक शृंगार में अतीन्द्रियता (४) लाक्षणिकता की प्रधानता (अन्योक्ति, वक्रोक्ति, प्रतीक (५) विश्व सुन्दरी प्रकृति में चेतना का आरोप, प्रकृति और मनुष्य मे रागात्मक संबंध (६) जीवन के प्रति दुःखमय और निराशापूर्ण दृष्टिकोण।

ये विशेषताएँ सम्पूर्णतः मौलिक नहीं हैं। इनमें से कुछ के लिए कबीर, रवीन्द्र या शेली का मुँह जोहना पड़ता है।

जब सं. १९६६ वि. में 'इन्दु' का उदय हुआ तो कविवर प्रसाद ने साहित्य के सम्बन्ध में स्वच्छन्दतावाद का

समर्थन किया। इन्दु के विभिन्न अंकों में प्रसाद को अपने प्रयोगों को क्रियात्मक रूप देने का अवसर मिला। उन्होंने बँगला, अँग्रेज़ी, उर्दू और संस्कृत में कुछ देखा उसका हिन्दी में समावेश करना चाहा।

"आँसू" एक छोटा-सा प्रेम-विरह काव्य है। अध्यात्म पक्ष की ओर उसके अर्थ खींच लिये गये हैं। उसमें कोई कहानी स्पष्ट रूप से नहीं वर्णन की गयी, परन्तु कहानी का आभास अवश्य मिलता है। कवि ने किसी से प्रेम किया है। यह प्रेम-व्यापार अनेक दिन तक चल कर समाप्त हो जाता है। मिलन-सुख की तरंगे विरह-तम के झझा में बदल जाती है।

इससे स्पष्ट हो जाता है कि 'आँसू' का आलम्बन स्थूल है। उस में मुक्तत्व और प्रबधत्व दोनों हैं। वास्तव में कथा-वस्तु की वीथिका न होने और अनेक नूतन प्रयोगों के कारण काव्य अस्पष्ट हो जाता है। अस्पष्टता के कारण मुख्य रूप से ये हैं :—

(१) मिश्रित उपमानों का प्रयोग (२) नये शब्दों का प्रयोग (३) पुराने उपमान वाग्वैदग्धता के सहारे उपस्थित किये गये हैं। (४) उर्दू काव्य का प्रभाव (५) नये मुहावरों का प्रयोग (६) अँग्रेज़ी का प्रभाव (७) प्रतीकों का प्रयोग।

फिर भी प्रसाद में पुरानापन बहुत है। वही उपमाएँ, वही उत्प्रेक्षाएँ, वही अभिसार, मिलन, विरह। परन्तु इस

काव्य में कवि की दौड़ मूर्त से अमूर्त की ओर है। प्राकृत काव्य अमूर्त से मूर्त की ओर है। "यह काव्य ध्वनि, लक्षणा-व्यंजना; सौन्दर्यमय प्रतीक-विधान; उपचार-वक्रता और स्वानुभूति से पूर्ण है।" उर्दू-फ़ारसी के प्रभाव में प्रसाद ने प्रेमिका को पुल्लिग से सम्बोधित किया है।

'आँसू' के दो संस्करण निकले। १९२५ ई. का 'आँसू' विशुद्ध प्रेम-काव्य है। उसका विषय है लौकिक प्रेम। परन्तु १९३८ के संस्करण में अनेक नये छन्द जोड़ कर उसे आध्यात्मिक रूप देने का प्रयत्न किया गया है, जिससे पाठक की उलझन और भी बढ़ जाती है।

हिन्दी काव्य-धारा में पहली बार व्यक्तित्व का प्रकाशन छायावाद काव्य में हुआ। प्रसाद के "आँसू" में यह प्रकाशन अत्यन्त संकोच के साथ है। प्रसाद की शैली निजी है। उसकी तीन विशेषताएँ हैं :—(१) सरसता (२) सांकेतिकता (३) ऐश्वर्यशाली मूर्तियत्ता। प्रसाद का काव्य संगीत के निकट है। प्रसाद ने शब्द-समूहों और वाक्यों की नयी-नयी भंगिमाओं की खोज की है। छन्दों में भी उन्होंने नवीन प्रयोग किये। उनका छायावाद जिन नवीनताओं को ले कर आया वे इस प्रकार थीं :—(१) वेदना की प्रधानता (२) स्वानुभूतिमयी अभिव्यक्ति (३) भावों की सूक्ष्म व्यंजवा (४) नवीन पद-योजना (५) नवीन शैली (६) नया वाक्य-विन्यास (७) शब्दों की नवीन भंगिमा।

प्रसाद ने अपने अतीत से, हिन्दी की प्राचीन काव्य-परम्परा से, बहुत-कुछ आत्मसात् किया। "ब्रजभाषा काव्य के माधुर्य से उनकी कल्पना के पर सिक्त थे। बँगला और संस्कृत भाषा के अध्ययन से उनकी रचना में कोमल कान्त पदावली मुसकुराने लगी।" प्रसाद ने उस अध्यात्मवाद की भावना को भी अपनाया जो हिन्दी काव्य-साहित्य की परम्परा में विद्यमान है। उनका 'आँसू' इस प्रकार इन अनगिनत प्रभावों का निचोड़ है तथा हिन्दी की मौलिक रचनाओं में उसे सम्मान के साथ स्मरण किया जाता है।

—:०:—

आँसू के छन्दों की व्याख्या

आँसू

(पृ. ७) प्रारम्भिक पंक्तियों में कवि ने अपने हृदय की वेदना का चित्र अंकित किया है। उसे अपनी उन परिस्थितियों का स्मरण हो आता है, जिनके कारण उसके हृदय में करुणा का संचार हुआ था। वह अपने हृदय को करुणा से सजा हुआ पाता है। वह गाने का प्रयास करता है, परन्तु उसका गीत वेदना से भरा हुआ है। उसके स्वर दुःखमय हैं, जिनमें उसके हृदय की वेदना का प्रत्यक्ष आभास मिलता है। पूर्व स्मृतियाँ उसके हृदय को व्यथित बना रही हैं। कवि प्रश्न करता है कि ऐसा क्यों होता है ?

(पृ. ८–१) कवि का हृदय (करुणा से भरा हुआ) समुद्र है। उस समुद्र के किनारे पर (आनन्द की स्मृति की) सुन्दर लहरें टक्कर खाती हैं। वेदना से भरे हुए हृदय में आनन्द की स्मृति चोट पहुँचाती है। लहरों का कल-कल शब्द समुद्र में सदैव ही होता रहता है। जिसने २० वर्ष पहले लहरों का समारोह देखा है, वह आज पुनः उसे देख कर पुरानी बातों का स्मरण कर सकता है ठीक उसी प्रकार हृदय में आनन्द का आवेग उन पुरानी-स्मृतियों को हरा कर देता है, जिनका अभाव हृदय को खल रहा था। कवि प्रश्न करता है कि ऐसा क्यों होता है ?

दैन कैन आई ड्राउन एन आई अनयूज्ड टू फ्लो,
फॉर प्रैशस फैण्डस हिड इन डैथ्स डेटलैस नाइट,
एण्ड वीप अफैश लब्ज़ लौंगसिन्स केन्सल्ड वू
एण्ड मोन द ऐक्सपैन्स आफ मैनी दी वेनिशड साइट
दैन कैन आई भ्रीव ऐट ग्रीवैन्सैज़ फोरगोन
एण्ड हैवीली फ्राम वू टू वू टैल ओवर
दी सैड एकाण्ट आफ फोर-बीमोन्ड मोन
व्हिच आइ न्यू पे ऐज़ इफ नाट पेड बीफोर।

——शेक्सपियर

(पृ. ८-२) कवि की वेदना का मर्म संसार के अन्य महानुभाव नहीं समझ पाते हैं और न उससे कोई सहानुभूति प्रदर्शित करता है। वह वेदना क्षितिज के अन्त तक और आकाश तक फैलती है और फिर उसी के पास लौट आती है। जिस प्रकार पहाड़ों से टकरा कर झाँई का शब्द लौट आता है, उसी प्रकार कवि के हृदय की वेदना आकाश और क्षितिज से टकरा कर दुखित बनी हुई पागल के समान सारे संसार का चक्कर लगा रही है। वह प्रश्न करता है——ऐसा क्यों होता है?

(पृ. ८-३) आकाश-गंगा से तात्पर्य रात्रि में दिखलाई देने वाले विशेष तारक-समूह से है। कवि स्वयं व्यथित है इसलिये वह आकाश-गंगा को भी व्यथित समझ रहा है।

कवि व्योमगंगा में दोनों छोर पर छिटकी हुई तारका-वलि को अपनी विचार-धारा में उत्पन्न होने वाली आनन्द की

स्मृतियों के समान समझता है। वह कहता है कि जिस प्रकार आकाश-गंगा में तारकावलि इधर–उधर दोनों किनारों पर छिटकी रहती है, उसी प्रकार चेतना (विचार-धारा) नदी में पूर्व की स्मृतियाँ रूपी लहरें चारों ओर फैल रहीं है। वह प्रश्न करता है कि ऐसा क्यों हो रहा है ?

"आबले पड़ गये दरया में नहीं है यह हुबाब,
आशना जल के मगर आपका डूबा कोई।"

विनय मोहन शर्मा––"मैंने अपने विह्वल जीवन के सुख-दुःख दोनों पहलुओं को स्पष्ट ही प्रस्तुत कर दिया है। मुझे स्वयं पता नहीं कि मैंने ऐसा क्यों किया ? इससे मुझे सुख अवश्य अनुभव हुआ।"

आकाश-गंगा के फेनिल तारक-समूह व्यथा के प्रतीक हैं। हृदय को वेदना मथती है, तो आँसू बहते हैं। आकाश-गंगा के दोनों छोर दिखलाई देते हैं, उसी प्रकार कवि ने अपने अपने जीवन के दोनों छोर "सुख-दुःख" को स्पष्ट कर दिया है।

व्यथित-व्योम-गंगा=जागृत जीवन

"तारे तो ये नहीं मेरी आहों से रात की,
सूराख पड़ गये है तमाम आसमान में"

––मीरतकी

"काँपता है आसमाँ क्या मेरी आहें सर्द से,
क्यों रक्खे है अंगारे बराबर फोड़ कर ।।"
"आई-शबे फ़िराक चबा जायगा मुझे
तारे नहीं, ये दाँत फ़लक के दहाँ में हैं ।"

—नासिख

(पृ. ९-१) कवि के दुःखित हृदय में पूर्व स्मृतियों का एक नगर ही बस गया है, अथवा एक अच्छा समूह एकत्रित हो गया है। जिस प्रकार नीले आकाश में तारकावलि, असंख्य और अपार, फैली रहती है, उसी प्रकार पूर्व स्मृतियाँ उसके नीले (चोट खाये हुए हृदय में) घर मे निवास करती है। चोट लगने पर शरीर में नीला चिन्ह पड़ जाता है।

(पृ. ९-२) कवि के जीवन में किसी समय आनन्द था, जिसका स्मरण अब उसे दिन रात जलाया करता है। पूर्व की स्मृतियाँ इसी तीव्र-दाह की चिनगारियाँ हैं, जो उस महामिलन के आनन्द के बाद बच रही हैं।

(पृ. १०-१) इस अग्नि में लकड़ी नहीं जलती है। यह हृदय की अग्नि है, जिसका कारण प्रिय वस्तुओं का अभाव है जो किसी समय आनन्द का कारण बनी हुई थीं। उसकी याद में कवि हृदय रोता है और आहें भरता है। ये दोनों वस्तुएँ भी उसे शांति नहीं देतीं। इनसे उसका हृदय-दाह बढ़ता ही रहता है। यह ज्वाला शीतल है, चूंकि इसकी उत्पत्ति कोमल

कारणों से है। नेत्रों से बहता हुआ जल इसका ईंधन है। उच्छ्वास इसे प्रदीप्त करते हैं। कवि-हृदय जीवन से ऊब चुका है, इसलिये उसे साँसों का आवागमन व्यर्थ ही लगता है। यह श्वासें उसे और भी कष्टप्रद प्रतीत होती हैं, क्योंकि उनसे हृदय-दाह प्रज्वलित होता है। श्वासें इस दाह के लिये हवा का काम करती हैं।

(पृ. १०-२) जहाँ पानी भरा हुआ हो, वहाँ अग्नि की आशंका करना भूल समझी जाती है, परन्तु फिर भी समुद्र में वाडवाग्नि की उपस्थिति सर्वमान्य है। ठीक इसी प्रकार प्रणय-विभोर प्रणयी अपने प्रणय को सुख और शान्ति का हेतु समझते हैं। वे समझ नहीं सकते कि इसका परिणाम असह्य वेदना भी हो सकता है। कवि प्रणय की स्मृति से व्याकुल हो कर सोचता है कि उस सुख के अन्तरतम में यह वेदना छिपी हुई थी, जैसे कि समुद्र में बाडवाग्नि छिपी रहती है। मछली समुद्र के नमकीन जल में उतनी प्रसन्न नहीं रहती, जितनी निर्मल सरिता जल में। लावण्यमयी का स्वरूप आँख रूपी मछलियों के लिये जल के समान है। देखते-देखते तृप्ति न होने के कारण वे व्याकुल रहती हैं। मछली जल के बिना नहीं रह सकती, आँखें भी रूप-लावण्य को निहारे बिना नहीं रह सकतीं। नमकीन जल में मछली विकल रहती है, उसी प्रकार अतृप्ति के कारण आँखें रूप देखते हुए भी व्याकुल रहती थीं।

(पृ. १०-३) मालका=पंक्ति; कुन्तल=केश; मुक्त=मोती; छूटे हुए या बिखरे हुए; नभ-मुक्त कुन्तला—जिसके लिये आकाश मोती जड़े हुए केशों के समान है (ऐसी धरणी) पूर्व स्मृतियों के कारण प्रेमी के लोचनों से अश्रु-प्रवाह होता है और प्रसन्न आनन उदास हो जाता है। कवि इन आँसुओं को मानस-समुद्र के बुलबुलों के रूप में देखता है, जो नेत्रों से बह कर फूटते चले जा रहे हैं। नेत्रों से बहती हुई अश्रु-अवलि आकाश से गिरते हुए नक्षत्रों के समान प्रतीत होती है। प्रेमी का उदास आनन वसुन्धरा के उस स्वरूप का प्रति-बिम्ब है, जब उसके आकाश रूपी केशों में गूँथे हुए नक्षत्र रूपी मोती झड़ जाते हैं। माँग भरना सौभाग्य का चिन्ह है और भरी हुई माँग का नष्ट होना वैधव्य का; अतएव उदास आनन किसी विधवा के उदास आनन के समान बन गया है।

(पृ. ११-१) अग्नि के सम्पर्क में शरीर के आने से उसमें छाले (फफोले) पड़ जाते हैं और शीतल उपचार से वे ठीक होते हैं। यदि उनको कोई छील-छील कर फोड़े तो वे असह्य वेदना का कारण होते है। उससे भी अधिक हृदय-द्रावक वह दशा है, जब कि यह क्रूर कर्म कोमल उपादानो से हो। पूर्व स्मृतियों की चिनगारियाँ हृदय में टीस रूपी छाले उत्पन्न करती हैं। दूसरों की सहानुभूति और समवेदना के शब्द कोमल चरणों की चोट के समान उनको छील-छील कर फोड़ते हैं, जिससे वेदना और बढ़ जाती है। सारांश यह है कि विरही का दुःख समवेदना के शब्दों से बढ़ता ही है। इस दयनीय

दशा पर करुणा की बूँदों के समान (द्रवीभूत हृदय-जन्य अश्रुओं के समान) आँसू घुल-घुल कर बह कर समाप्त हो जाते हैं। कविवर कौशलेन्द्र के शब्दों में--

"कौशलेन्द्र" भेद नहीं जान पड़ता है--कुछ
क्योंकर लगे हैं सब हम को सताने में।
खल-दल सबल लगा है शान्ति हरने में,
सुजन-समाज दुःख-घन के बँटाने में।"

(पृ. ११-२) टू सौरो आई बेड गुड-मौरो,
एण्ड थौट टू लीव हर फार अवे बिहाइण्ड
बट चीयरली, चीयरली, शी लव्ज़ मी डीयरली
शी इज सो कॉन्स्टैण्ट टू मी ऐण्ड सो काण्ड
आई वुड डिसीव हर,
एण्ड सो लीव हर
आह! शी इज सो कॉन्स्टैण्ट सो काइण्ड।

--कीट्स

कवि-हृदय ने इस वेदना को अपना कर सुख को त्याग दिया है। उसकी विचार-शक्ति इतनी दुर्बल और ज्ञानशून्य हो गई है कि वह यह न सोच सका कि सुख और दुःख में किसे अपनाना चाहिए। कविवर कीट्स दुःखदेव को छोड़ कर भागना चाहते हैं, परन्तु दुःखदेव का प्रेम पक्का है--वे एक बार अपना कर फिर छोड़ने का नाम नहीं लेते। कवि ने ऐसे पक्के मित्र को अपनाने का साहस किया है। अब अपनी विचार-शक्ति की दुर्बलता पर विचार कर पछताने से क्या लाभ।

(पृ.१३–३) कवि हृदय में पुनर्मिलन की अभिलाषाएँ बार–बार घूम फिर कर आती हैं, जिनके कारण वियोग-व्यथा पुनःजागृत होती हैं–सुख विदा हो जाता है और आँखों से आँसू बहने लगते हैं। पलक भीग जाते हैं और रोते-रोते ही नींद आ जाती है। कवि ने इस दशा को चित्रित करने में सुप्त मनुष्य की दशा का चित्र सामने रखा है, जो सुख के स्वप्न देख रहा है परन्तु करवट बदलने में आँख खुल जाती है–चिरसंगी दुःख पुनः सताने लगता है–सुख स्वयं विदा हो जाता है। अपनी दशा पर खिन्न हो कर वह पुनः व्यथित होता है और धीरे–धीरे निद्रा-निमग्न हो जाता है। यहाँ कवि–हृदय की बदलती अभिलाषाएँ करवट बदलने के समान हैं। सोई हुई व्यथा को जगा कर कवि ने उसे साकारता प्रदान की है। 'फिर' से स्पष्ट है कि ऐसा बार–बार होता रहता है। सुख का स्वप्न हो जाना उसके सर्वथा अभाव का परिचायक है और भीगी पलकों का लगना 'अभी टुक रोते–रोते सो गया है' का रूपान्तर है।

"सिराने मीर के धीरे बोलो।
अभी टुक रोते-रोते सो गया है।"

––मीर

(पृ. १०–१) कमल में भ्रमर का बन्दी होना विशेषतः पराग के लालच में प्रकृति का सुविख्यात व्यापार है। परन्तु हृदय की उपमा कमल से दी जाती है और केशावलि की कृष्णता का भ्रमर की कृष्णता से सादृश्य है। कवि अपने हृदय की उस पूर्वावस्था का स्मरण करता है जब हृदय प्रेयसी के बालों की उलझन में घिर गया था। कमल का अलि की उलझन में घिरना प्रकृति विरुद्ध कार्य है, परन्तु हृदय के

केशपाश पर रम जाने का वर्णन किया जाता है। यहाँ अलंकार द्वारा कवि-हृदय की उस अवस्था का वर्णन किया गया है जब कवि-हृदय केशपाश से विचलित हुआ था और आँखों ने आँसू रूपी पराग गिराया था, जो उसकी नि श्वासों के पवन में मिल कर उड़ जाता था।

हृदय रूपी कमल भ्रमर रूपी केशावलि में घिरा (विरोधाभास) और आँसू रूपी पराग गिर कर उच्छ्वास रूपी हवा में मिल गये।

(पृ. १२–२) वह मनोरंजन के आयोजन मादक (उन्मत्त-बनाने वाले) और चित्ताकर्षक थे। परन्तु अब उस मीठे प्रेम का स्मरण एक दर्द बन गया है, जो हृदय में हल-चल उत्पन्न करता रहता है।

(पृ. १२–३) कवि-हृदय की उमंगें शांत हो चुकी हैं। परन्तु अब भी सुख के सम्पर्क में आने से वे विचलित हो उठती हैं। सुख से चोट पहुँचती है। जीवन में अब कोई आनन्द नहीं है। साँस लेना और बाहर निकालना अब बेगार का काम हो गया है। हृदय पूर्व स्मृतियों की समाधि बन गया है, जिस पर बैठी-बैठी स्वयं दया एक कोने में रोया करती है। पुरानी बातों का स्मरण कर उनके अभाव में हृदय में बेकली उत्पन्न होती है, जिस पर दया को भी दया आती है। कवि के आँसू कवि-हृदय का रुदन नहीं बल्कि उस

करुणा का रोना है जो हृदय रूपी समाधि पर विराजती है।

(पृ. १३–१) जिस प्रकार पपीहे की आश्चर्य में डालने वाली पुकार में करुणा भरी रहती है, जिस प्रकार श्यामा के सीधे साधे रस भरे स्वर में करुणा का आभास मिलता है, उसी प्रकार कवि की करुणोत्पादक कहानी का यह अंश भी सदैव आँसुओं से भीगा रहता है। कहने वाला इसे आँसू बहाता हुआ कहता है और सुनने वाला सुनते-सुनते आँसू बहाने लगता है।

(पृ. १३–२) जो अपने सुख में निमग्न हो सब कुछ भूल रहे हैं––जिनकी वेदनाएँ सोई हुई हैं, उनको यह दुःख भरी कथा सुनने का समय कहाँ है।

(पृ. १४–१) इस वेदनामय जीवन की समस्याएँ किसी योगी की जटाओं की भाँति बढ़ रही हैं। हृदय उजाड़-सा हो रहा है। उसमें मरुभूमि जैसी धूल उड़ रही है, मानो जीवन-रूपी जटा बढ़ाए हुए योगी विभूति (भभूति) बाँट रहा है।

(पृ. १४–२) बादलों को आकाश में उमड़ते हुए जिन्होंने देखा है, वे इस छन्द की सरसता पर विमुग्ध हो जाते हैं। कवि-हृदय में जो अधिकाधिक पीड़ा एकत्रित हो रही थी, वह मस्तिष्क में स्मृति बन कर छा गयी। बादल जब छा जाते हैं, तो उनका बरसना स्वाभाविक है। पीड़ा स्मृति बन कर जब छा गयी है, तो आँसू बन कर वह बरसे, तभी दुर्दिन में

(१. अकाल के दिनों में २. दुःख के दिनों में) शांति-लाभ हो सकता है। पुरानी बातों का स्मरण कर कवि-हृदय आज रो कर कुछ शांति लाभ कर रहा है, जिस प्रकार अकाल-पीड़ित भूमि में बादल बरस जाने से शांति होती है।

रोना याद आएगा, पिघलने लगेगा उर,
कोई मत देखना हमारी ओर प्यार से॥

"कौशलेन्द्र"

सहानुभूति प्रदर्शित करने वालों के प्रति कवि-हृदय का निवेदन और प्रश्न बड़ा गम्भीर है। वह तो अपने दुःख से दुःखी है ही दूसरे लोग क्यों उसके 'दर्द-सर' को अपने सर लें। वह पूछता है कि मेरे इस रुदन मे क्या वीणा की झंकार का माधुर्य है जिसे दूसरे लोग चाव से सुनते है। इन आँसुओं से तुम्हारे हृदय में दया ही उत्पन्न होगी। इन आँसू-रूपी धागों से तुम्हारे हृदय में करुणा-रूपी वस्त्र बुना जाता है।

(पृ. १५–१) मैं (कवि) रो-रो कर और सिसक-सिसक कर अपनी दया से भरी हुई कहानी सुनाता हूँ। तुम (उससे सहानुभूति रखने वाले) अपने अच्छे मन में दुःख उत्पन्न करते हो। मेरी करुणा-कहानी सुन कर तुम सब कुछ जान कर भी उसे अनजानी कर देने की (मेरी वेदना को मेरे हृदय से निकाल देने की) चेष्टा करते हो।

(पृ. १५–२) मैं अपनी वेदना से विकल हो कर बल खाता जा रहा था। मैं उसी पीड़ा पर मोहित था––न्यौछावर हो रहा था और सब कुछ भूल रहा था। हृदय-रूपी वीणा के तार खिचे हुए थे और हमारा स्वर तीव्र था। पूर्व-स्मृतियों द्वारा उत्पन्न की गयी पीड़ा भी उसे मस्त बना रही थी क्योंकि जिन बातों का स्मरण कर रहा था वह स्वय तो आनन्दप्रद थीं––अब उनका अभाव ही पीड़ा का कारण था।

(पृ. १५–३) उस वेदना ने हृदय को झकझोर डाला है, वेदना हाहाकार उत्पन्न करती है––हृदय में टीस उत्पन्न करती है और अश्रु-प्रवाह को भी जन्म देती है। अतएव कवि कल्पना करता है कि आँधी-तूफ़ान; गरजते हुए बादल और बरसते हुए मेघ सभी हृदय को खाली (आनन्द से शून्य) पा कर यही स्थाई रूप से निवास करने लगे है।

(पृ. १६–१) कवि-हृदय कुटीर के चारों ओर पूर्व स्मृतियाँ प्रलय की घटाओं के समान घिर आती है। अपने चारों ओर आनन्द का अभाव पा कर अन्धकार ही अन्धकार प्रतीत होता है। मानो वे प्रलय-घटाएँ अन्धकार का चूर्ण ही चारों ओर बरसा जाती है।

(पृ. १६–२) इस अन्धकार के समय (जब कि उज्जवल भविष्य की कोई आशा नहीं रहती) अपने प्रिय की स्मृति पुनः बिजली जैसी तड़पन उत्पन्न करती है। कवि-हृदय कल्पना

करता है कि कोई उसके अँधेरे आँगन में बिजलियों (तड़पन) की माला पहन कर आता है और अन्त में उसके हृदय-स्थल पर अश्रु-बुन्द गिराने का कारण बनता है ।

(पृ. १६–२) कवि-हृदय में अपने प्रिय की याद बराबर आया करती है । उसके सहयोग से जो आनन्द मिलता था, वह तो अब नहीं रहा परन्तु उसकी स्मृति स्थायी है । उसके झूठे संसार में जहाँ सब कुछ था और अब कुछ भी नहीं है, केवल उसके प्रियतम ही सत्य है क्योंकि उनका अविनाशी सौन्दर्य सदैव ही उसके सामने रहता है । वह प्रतिमा उसके समस्त जीवन में उसकी साथी है और जीवन को कल्याणप्रद बनाने वाली है । जिस प्रकार मार्ग में किसी यात्री-साथी के मिल जाने से आनन्द की प्राप्ति होती है, कवि-हृदय को प्रियतम के चिन्तन से जीवन-यात्रा में साथी मिल जाता है, जो उसे कल्याणप्रद है ।

(पृ. १७–१) कवि वेदना के कारण कई रात्रि तक सो नहीं सका । अपने प्रिय की प्रतीक्षा में रात्रि तारे गिन-गिन कर काट दी । इस विचार से कि भूले हुए प्रियतम ठीक मार्ग पर चल कर ठीक स्थल पर आ जाएँ, अनेकों रात्रियों में तारागणों के दीपक जला कर रात्रि का एकाकीपन दूर किया । आकाश में जो स्वर्गगा अँधेरी रात्रि में स्पष्ट हो जाती है, उसमें चमकते हुए आँसू (उज्वल उपहार) चढ़ा दिये । परन्तु इतनी प्रतीक्षा के पश्चात् भी निराशा ही हाथ

लगी। अँधेरी रात्रि में असंख्य तारागण एवं स्वर्गगा जब अधिक स्पष्ट हो जाती है, अपने को एकाकी पा कर कवि-हृदय की वेदना और भी बढ़ जाती है। वह रो-रो कर अश्रु गिराता है जो मानो स्वर्गगा को भेंट चढ़ाई जा रही है। दीपक जला कर और स्वर्गगा की मनौती मना कर प्रतीक्षा करने में आकुलता का अच्छा आभास है।

(पृ. १७–२) व्यथित हृदय को अब वे दृश्य स्मरण हो रहे है, जब उसने प्रिय से साक्षात् किया था। उसे अभिमान था कि उसके प्रियतम उससे मिलने के लिये इसी पृथ्वीतल पर आ गये है। वह सदैव का दास इस मधुर कल्पना पर भक्ति-भाव से गर्व कर उठा जैसे कोई रात्रि के अन्तिम प्रहर में सुख-स्वप्न देखे।

उस समय वसन्त की रात्रि मुस्करा रही थी, अथवा रात्रि में भीनी-भीनी चाँदनी छिटक रही थी, जब कवि ने प्रियतम से प्रथम भेट की थी। उसी समय उसको वे न जाने कितने दिनों की जान-पहचान के प्रतीत हुए।

(पृ. १८–१) जिस प्रकार समुद्र और पूर्णमासी का चन्द्र आपस में परिचित होते है, और चन्द्रमा की किरणें ऊपर से उतर कर समुद्र की लहरों से गले मिलती हैं, उसी प्रकार कवि भी अपने प्रियतम की शोभा बिना पलक बन्द किये एक-टक देखा करता था। कवि-हृदय में प्रतिभा का उदय होता

था और वह कविता के रूप में अपने हृदय का उल्लास प्रकट कर देता था।

(पृ. १८–३) उस समय अपने सुख में निमग्न होने के कारण झरने के समान आनन्द में वह बहा करता। उस माया में मंत्रमुग्ध हो जाने के कारण माधवी-कुञ्ज रूपी सौन्दर्य की छाया में बैठा-बैठा वह सब कुछ भूल गया था। प्रेमानन्द ने उसे चेतना-शून्य बना दिया था।

(पृ. १९–१) जब तक प्रिय से साक्षात् न हुआ था—उस हृदय-रूपी फुलवारी में पतझड़ का मौसम था। सूखे वृक्ष शुष्क फुलवारी में विद्यमान थे। परन्तु प्रिय से साक्षात् होते ही हृदय में आनन्द की लहर आ गयी, मानो फुलवारी में नये पत्ते और फूल बिछाते हुए ही प्रियतम उधर आये थे।

(पृ. १९–२) संध्या समय गोधूली बेला में कुल-वधुओं का अपने चन्द्र-मुख को घूँघट से छिपा कर अपनी सारी के अञ्चल में दीप को आश्रय दे कर एक स्थल से दूसरे स्थल पर ले जाना भारतीय गृहों का साधारण दृश्य है, जिसे बिजली के प्रसार आर हरीकेन लैम्पों के प्रचार के पूर्व सभी ने देखा होगा। कवि उसी दृश्य को हृदयंगम कर कहता है कि उसके प्रिय भी ठीक उसी प्रकार उसके जीवन की गोधूली में (जीवन में उस समय जब दुःख और सुख का एक दूसरे से सम्मेलन हो रहा था—जैसे गोधूली-बेला में दिन और

रात्रि का होता है।) अपने चन्द्र मुख को घूँघट के आवरण में ढँके और अञ्चल में हृदय-रूपी दीप छिपाये हुए उसके सामने आये।

(पृ. १९–३) वह प्रियतम उसे ऐसे सुन्दर प्रतीत हुए जैसे बादलों के बीच में विद्युत हो और विद्युत में भी उसकी चपल चमक हो। हृदय की निराशा का काले बादलों से मिलान ठीक बैठता है, उसमें आशा की झलक बिजली के समान ही है। आँखों में काली पुतली का जो मूल्य है और उस पुतली में भी श्याम झलक का जो स्थान है, वही महत्त्व-पूर्ण स्थान उसके प्रिय ने उसके हृदय में प्राप्त किया।

(पृ. २०–१) प्रिय की सुन्दर छवि आँखों में इस प्रकार समा गयी जैसे इस नश्वर शरीर की प्रतिमा में जीवनतत्व (सजीवता) सर्वत्र कण-कण में समाई हुई है। उनकी शोभा की छटा की रेखाएँ इतनी सुस्पष्ट थीं कि असंख्य रेखाओं के मध्य भी वे सुगमता से पहचानी जाती थीं।

(पृ. २०–२) कवि यह मानता है कि उसके सुन्दर प्रिय के चिर स्थायी यौवन में रूप की कुछ सीमा होगी, परन्तु उसके मन के सीमा-रहित आकाश में वह रूप फैल गया था। प्रिय को पहले देखा था, अब उनका स्मरण किया जाता है। उनका रूप और यौवन अब कल्पना का विषय होने के कारण चिरस्थाई है।

(पृ. २०–२) कवि का प्रिय उस सौन्दर्य की कला की प्यारी शोभा था, जिस पर सुन्दरता का पर्वत राई बना कर न्यौछावर किया जा सके।

(पृ. २१–१) उस प्रिया के केशावलि से ढँके मुख को देख कर कवि कल्पना करता था कि चन्द्रमा को किसने इन काली जंजीरों में बाँध रखा है। अथवा केशपाश-रूपी सर्पों का (जिनके ललाट पर मणि-रूपी मुख है) मुख (वेणी की माँग में गुँथे हुए) हीरों से क्यों भरा हुआ था।

(पृ. २१–२) प्रिये की काली आँखों में युवावस्था की उन्मत्तता की लालिमा विद्यमान थी, मानो आँख-रूपी नीलम की प्याली को किसी माणिक के रंग की शराब से भर दिया है।

(पृ. २२–१) प्रिये की आँखों की पुतली जो इधर से उधर आँखों के स्वच्छ जल में घूमती थी नीलम की बनी हुई नौका के सदृश छविमान थी। उन नयनों में लगे हुए अञ्जन की काली रेखा न जाने कितने हृदयों को निर्वासित कर चुकी है अतएव काले पानी के समय का दृश्य उपस्थित करती है। भारत में गुरुतर अपराधों के अपराधी अण्डमन भेजे जाते थे और इसे ही काले पानी की सज़ा कहते हैं। अथवा काले पानी जाते समय किसी हृदय में जितना घना विषाद होता है उतनी ही काली उस प्रियतमे की अंजन-रेखा थी।

बेला=१. समय; २. समुद्र का किनारा।

"काला पानी बेला सी" का अर्थ काले पानी के समुद्र किनारे के समान काली उस नायिका की अंजन रेखा थी।"

(पृ. २२–२) प्रियतमे की वरुणी चित्रकार की तूलिका (कूँची) के समान अनेकों घायल दृश्यों का चित्र क्षितिज-रूपी पर्दे पर बना कर प्रियतमे को सफल चित्रकार बना देती थी। प्रियतमा की बरौनी इतनी सुन्दर थी कि जो उसे देख लेता प्रभावित हो जाता था। अतएव दूर क्षितिज तक अनेकों चोटिल हृदय उसकी बरौनी के कारण चित्रित से दिखलाई देते थे।

(पृ. २२–३) प्रियतमे के कोमल कपोलों के संरक्षण में सदैव ही मृदुल हास्य की रेखाएँ विद्यमान रहती थीं। उसमें कुछ कुटिलता थी, इस बात को केवल वे व्यक्ति ही जान सकते थे, जिन्होंने उसकी भँवों में बाँकपन देखा था।

(पृ. २३–१) लाल अधरों जैसे मूँगों में सीपी के अंदर रहने वाले मोती के दाने जैसे दाँत कहाँ से आ गये ? यहाँ हंस तो पास में है नहीं––शुक का स्मरण कराने वाली नासिका तो है भी––फिर उस शुक के चुँगने के लिये मोतियों की क्या आवश्यकता थी। कवि प्रियतमे की दंत-पंक्ति की मोतियों से तुलना करता है और नासिका की शुक से और शुक के लिए मोतियों का सामीप्य व्यर्थ समझ कर उस पर आश्चर्य प्रकट करता है।

(पृ. २३–२) प्रियतमे का हास्य इतना सुन्दर था कि यदि वसन्त-ऋतु के उषा काल में खिले हुए कमलों के वन की

शोभा उसे एक क्षण के लिये देख लेती तो उसका उपहास बन जाता। प्रियतमे का हास्य कमल-वन के हास्य से भी सुन्दर था।

पुरइन = कमल।

(पृ. २३–३) कमल स्वरूपी मुख के पास दो कमल के पत्ते (श्रवण) शोभा पा रहे थे। इन कानों मे किसी की वेदना कैसे ठहर सकती है। जिस प्रकार कमल के पत्ते पर पानी की बूँद नही ठहर सकती, उसी प्रकार इन श्रवणों में वेदना की पुकार इस उस ओर से आ कर ओर निकल जाती थी।

(पृ. २४–१) नायिका की दोनो अनोखी बाँहे शरीर-रूपी शोभा के सरोवर मे उठी हुई लहरे थी। अथवा कामदेव के किसी धनुष की ढीली पड़ी हुई दुहरी डोरी थी।

(पृ. २४–२) उस पवित्र शरीर की शोभा का मधुर प्रकाश ऐसा था मानो विद्युत पूर्णमासी की चाँदनी में स्नान कर आई है। उस शोभा में चपला जैसी चमक थी और चन्द्र-ज्योत्स्ना जैसी शीतलता।

(पृ. २४–३) यह स्वरूप केवल कवि-हृदय को छलने के लिए था फिर भी उसमें अत्यधिक विश्वास हो गया था। उस छल की शरण में जा कर वह अपने अस्तित्व को भी कुछ-कुछ सच्चा समझने लगा था।

(पृ. २५–१) प्रेयसी का वह रूप केवल स्वरूप ही स्वरूप था अथवा उसमें कुछ हृदय भी था––इस प्रश्न का निर्णय कठिन है। कवि मे जड़ता अथवा अज्ञान का ही सब खेल हो रहा था, पर वह उस छल में चैतन्यता का आभास पाता था।

(पृ. २५–२) कवि के जीवन की कठिनाइयों को बढ़ाने के लिये हो कदाचित् प्रेयसी के बाल बिखरे हुए थे। बिखरे हुए बालों में मन का उलझना बिखरने और उलझने में विरोध होते हुए भी सत्य है। उस कमलानन के पराग-रूपी मदिरा का पान तो शरीर के किसी अन्य अंग (संभवतः अधर) ने किया होगा, परन्तु फलस्वरूप आँखें बंद हो गई (उचित मार्ग न समझ पड़ा)।

(पृ. २५–३) जितनी उलझन बढ़ती जाती थी, उतनी ही हृदय की शांति उसकी भूलों पर हँसती थी अथवा दूर होती जाती थी। मन के इस प्रकार उलझने में सुख का श्रोत भी बन्दी बनता जा रहा था और दया भी इस दशा पर दया न दिखला के रूठ कर अलग बैठती जाती थी।

(पृ. २६–१) उन दिनों जब प्रिये का साथ था, प्रकृति के सुन्दर दृश्य भी आनन्द देते थे। प्रभात मे पेड़ों के पत्ते और सुन्दर लताओं के पत्ते हिल कर एक-दूसरे को गले लगाते-से प्रतीत होते थे। अलिगण फूलों का चुम्बन कर अपनी 'गुन-गुन' की अद्भुत तान आरम्भ करते थे।

(पृ. २६–२) यह मधुपों का गुंजार बाँसुरी के बजने के समान था। फूलों की पंखड़ियों में हँसी सर्वत्र दृष्टिगोचर होती थी। मधुपों का गायन पराग के बोझ से दबा होने के कारण कानों में प्रवेश कर वहीं ठहर जाता था। भ्रमरगण मकरन्द पान कर गाते थे अतएव उनके उन्मत्त गायन कानों को अत्यन्त रुचिकर प्रतीत होते थे।

(पृ. २७–१) प्रेयसी के परिरम्भन में घड़ों मदिरा का उन्माद था। उसके विश्वास मलय समीर के झोंकों के समान सुखदाई थे। उसके मुखचन्द्र की चाँदनी का जल कवि का मुख धोता था तब वह प्रभात में जागता था। प्रिये के मुख के दर्शन करने का चाव उसे प्रभात में जगा देता था।

(पृ. २७–२) सुख की रात्रि थक जाती थी (जहाँ की तहाँ रह जाती थी)। प्रिय का मुख-रूपी चन्द्र कवि-हृदय में छिप जाता था। आकाश के पर्दे पर जिस प्रकार नक्षत्र छाए रहते हैं, उसी प्रकार प्रेम-विभोर प्रणयी के वस्त्र श्वेद-बुन्द से भीगे रहते।

(पृ. २७–३) उन दिनों कवि को जैसा आनन्द मिला था, वैसे आनन्द के फिर मिलने की कोई आशा नहीं है। वह कहता है कि उसके मिलने के कुंज में (प्रिये से भेंट करने के स्थान में) चाँदनी मेरे सुख-स्वप्नों के भार से थकी हुई और आलस्य-निमग्न हो कर अब कभी न सोएगी। वही

चादना जा सयाग क क्षणा म सुख-स्वप्ना का सुखद बनाता। हुई वहीं आलस्य से सोती हुई प्रतीत होती थी--अब फिर कभी वैसा न करेगी।

(पृ. २८-१) अब तो वियोग की दशा में कवि-हृदय की लहरों (उमंगों) में प्रिये के दर्शनों की प्यास (अभिलाषा) भरी है। परन्तु उस प्यास की तृप्ति के लिये जिस पात्र में तरल संकलित रहता था वह रिक्त है। दर्शनों की प्यास नेत्रों द्वारा छवि देखने पर मिटती है। नेत्र ही प्यास मिटाने का साधन हैं। दर्शनों का प्यासा नेत्रों की ओर उसी तृष्णा और आशा से देखता है जिस प्रकार पानी का प्यासा जल के घड़े को अथवा मदपायी मदिरा की सुराही को। इन नेत्रों का शून्य दृष्टि से देखना उतना ही निराश बना सकता है जितना मदिरा-घट का रिक्त होना। भँवर-पात्र अथवा भ्रमर के समान आँखें (जिनकी श्वेतता और श्याम पुतली के कारण कविगण कमल पर बैठे हुए भ्रमर से उनकी तुलना करते है) जो कि दर्शनों की प्यास का आधार होने के कारण दर्शन-रूपी आसव का पात्र है--खाली है। सब कुछ देख कर भी कुछ नहीं देखती है। मानस (हृदय) जिस पर दर्शनों का सबसे अधिक प्रभाव पड़ता था अब शुष्क हो चला है। ऐसा प्रतीत होता है कि अपनी आँखों की प्याली मे भर कर प्रिये ने कवि-हृदय का समस्त पराग पी लिया। मानस को खाली कर देने पर उधर से आँखें फेर लीं। जिस प्रकार प्याली की

मदिरा समाप्त हो जाने पर उसे एक ओर पटक देते हैं—प्रिये ने भी अपने चक्षु-चषक को फेर लिया।

(पृ. २८–२) हृदय वियोगावस्था में उजड़े हुए कमल-समूह की भाँति हो जाता है। उससे सरस पराग न उड़ कर रूखा पराग (जिसमें गन्ध नहीं, रस नहीं) उड़ा करता है। अर्थात् हृदय की सुकुमार भावनाएँ नष्ट हो कर, उसमें विषाद का प्रभाव व्याप्त हो गया है। कवि का प्रेम-रूपी कमल जो किसी समय विकसित हुआ था आज इसी हृदय-सरोवर में सूख गया है।

(पृ. २९–१) मलय-जन्य सुखद समीर की मीठी-मीठी लहरें कवि को छू कर कहाँ छिप गईं? करुणा से भरी हुई निगाहों के किनारे क्यों कवि की ओर आ कर दूसरी ओर चले गये। जो आनन्द कवि को प्राप्त था—वह कहाँ विलीन हो गया।

(पृ. २९–२) कवि सब कुछ भूलता जा रहा है। केवल जो कुछ आनन्द और वैभव था, उसका उन्माद शेष रह गया है। मन में जो उल्लास था, उसके स्थान में बेहोशी-सी छाई रहती है। जो कुछ सुख की कल्पना थी, वह स्वप्न की भाँति थी। निर्जन में बजती हुई मुरली के नाद द्वारा प्राप्त होने वाले आनन्द के समान कवि-हृदय का आनन्द था। निर्जन की मुरली जब चाहती रुक जाती है। कवि उससे अनुरोध नहीं

कर सकता कि अभी कुछ देर और बजने दो--उसी प्रकार कवि का आनन्द था, जब तक किसी अदृश्य शक्ति की इच्छा रही, उसे आनन्द मिलता रहा और जब उस शक्ति ने चाहा-आनन्द समाप्त हो गया।

मुरली को 'मधुर भावनाओं का प्रतीक, मान लेने से अर्थ बदल जायेगा।

अब एकाकी जीवन में 'मधुर-भावनाओं' की स्मृति गूँजती रहती थी।

(पृ. ३०-१) वियोगावस्था में कवि अनुभव करता है कि उसका हीरे जैसा मूल्यवान हृदय प्रिये की सिरस-सुमन जैसी सुकुमारता द्वारा टुकड़े-टुकड़े किया गया है। हृदय को हीरे के समान कठोर मानने से उस पर किसी का प्रभाव पड़ना असम्भव हो जाएगा, अतएव उसकी समानता मूल्य द्वारा ही करनी चाहिए।

हिम (जाड़े की ऋतु, चन्द्रमा, चंदन, कपूर, मोती व कमल इत्यादि) उद्दीपन की शीतल सामग्रियाँ अब (असफल) प्रणय की अग्नि बन कर उस हृदय को विरहाग्नि में जला रही हैं।

(पृ. ३०-२) सन्ध्या समय कमलों का मुरझाना स्वाभाविक है। कवि कल्पना करता है कि सन्ध्या समय जब कि कमल इस बात का ध्यान रखते हुए कि कहीं भ्रमर न देख

लेवें कुम्हलाना शुरू करते हैं उस समय वह उस धुंधले अन्धकार के लिये, उस सुन्दर सन्ध्या के लिये और पुनर्मिलन की आशा के लिये, सभी के लिये विलाप करता है।

(पृ. ३०–३) कवि हृदय का स्नेह (१. प्रेम २. तेल) दीपक की भाँति जल उठा। इस दीपक में नवनीत (घी) कवि का हृदय ही बना। हृदय तो जल गया लेकिन उस दीपक से जो धूम्र-रेखा निकली वह अब तक शेष है और कवि-हृदय में अन्धकार चित्रित कर रही है, अथवा उसके चारों ओर अन्धकार उपस्थित कर रही है, जिससे सन्ध्या फैलती जा रही है।

(पृ. ३१–१) रात्रि हो गयी। मुर्ली मौन है अथवा संसार का आनन्दमय संगीत समाप्त हो गया। पक्षियों का कलरव शांत है। भ्रमरों के परिवार कमलों में बन्द थे (हैं।) उस समय प्रणय की नदी (वेग से) प्रवाहित हुई और अन्धकार से आवृत्त हृदय-रूपी पुलिन (पानी के अन्दर से हाल की निकली हुई जगह) को पुनः डुबो दिया। रात्रि के समय में जो कुछ शान्ति आ भी सकी थी उसे प्रणय-चिन्तन ने पुनः समाप्त कर दिया।

(पृ. ३१–२) कुसुमाकर (पीले पुष्प वाला एक वृक्ष विशेष) जो रात्रि के पिछले प्रहर में खिलता है और प्रभात में धूल में मिल जाता है, उसी कोमल सिरस के फूल की भाँति

कवि-हृदय भी प्रभात में धूल में मिला हुआ-सा मृतप्रायः और उत्साहहीन हो जाता है।

(पृ. ३१–३) कवि की विरह-सरिता के किनारे धीरे-धीरे आने वाला मलयानिल (प्रभात पवन) अपने पराग की गन्ध के भार से घबड़ाया-सा प्रतीत होता है और अपनी आहें वहाँ छोड़ जाता है। विरह-दशा में साधारणतया सुखदाई समीर भी दुखदाई प्रतीत होता है।

(पृ. ३२–१) प्रभात में पूर्व दिशा की शोभा भी कवि का उत्साह नहीं बढ़ाती। पूर्व दिशा की पीली शोभा कवि के हृदय में ईर्ष्या उत्पन्न करती है। वह समझता है कि प्राची के कपोल पर उसके प्रिये ने चम्बन किया है और इसीलिये वह पीला है। स्वयं ऐसे साधनों का अभाव पा कर उसकी पीड़ा बढ जाती है। वह सारी रात कोरी आँखों (बिना रात में सोए हुए अपने प्रिय की बाट जोहता रहा अब प्रभात में (निराशा से भर कर) सो जाना ही उसके लिए उत्तम है।

(पृ. ३२–२) कवि की ईर्ष्या तब और भी बढ जाती है, जब वह देखता है कि पृथ्वी का श्यामल अञ्चल तो ओस रूपी आँसुओं अथवा मोतियों से भरा हुआ है, लेकिन वह प्रेम-रूपी प्रभात के आकाश में बिना पानी का बादल बन कर घूम रहा है। पृथ्वी के आँसू तो मोती बन गए पर वह रात को रो कर खाली हो गया।

(पृ. ३२–३) सौन्दर्य जिसका दर्शन कवि की वेदना का कारण बना है उसे विष-प्याली के पीने के सदृश प्रतीत होता है। वही विष (सौन्दर्य) अब उसकी आँखों में मादकता लाने के कारण मदिरा बन गया है। अब मेरे जीवन में प्रेम केवल सौन्दर्य से भरे हुए पलकों-रूपी प्याले में ही शेष है। कवि अब केवल उस सौन्दर्य को ही प्यार कर सकता है, जो प्रिया की आँखों में समाया हुआ है।

अब तो मेरे हृदय में उन सुन्दर पलकों के प्याले का प्रेम जीवन की साध बन कर बस गया है। (मैं उन सुन्दर पलकों को चूमना चाहता हूँ)।

—विनय मोहन शर्मा

(पृ. ३३–३) कवि की कामनाओं का समुद्र अतीत में हिलोरें ले रहा था। समुद्र में पूर्णिमा के दिन ज्वार के समय लहरें बहुत ऊँची उठती हैं। यहाँ प्रेयसी की छवि पूर्णिमा के समान कवि की कामनाओं के समुद्र पर छा जाती थी, अतएव उस समुद्र में ऊँची-ऊँची लहरें उठने लगतीं। प्रेयसी की छवि निहार कर कवि-हृदय अगणित कामनाएँ करने लगता। उसके चन्द्र (चन्द्रमुखी प्रेयसी) का प्रतिबिम्ब उसकी समस्त कामनाओं के समुद्र में अब भी चमकता रहता है। यह प्रतिबिम्ब समस्त कामनाओं को प्रभावित कर रहा है, इसलिये प्रतिबिम्ब स्वयं कामनाओं का समुद्र बन गया। दोनों में कोई अन्तर

नहीं रहा। जितनी भी कामनाएँ हैं--सभी उस छवि से सम्बन्ध रखती हैं।

(पृ. ३३-२) प्रेयसी के सौन्दर्य के परदे के सामने छायानट वशीकरण वंशी बजाता रहता है। सन्ध्या के समय जब घोर अमावस का अन्धकार छाया हो, वह छायानट अपना खेल दिखा जाता है। कवि अनुभव करता है कि प्रियतमे की छवि उसके सामने है। अभिनय हो रहा है। कोई छायानट (प्रेयसी की छवि का प्रतिबिम्ब) उसे अब भी कोमल वाणी सुना-सुना कर विमोहित कर रहा है। कवि के घोर यातना के समय जिसकी तुलना वह अमावस्या के अन्धकार से कर रहा है यह छायानट अपना खेल दिखा कर चला जाता है, अपनी शोभा की झलक दिखा कर उसे और भी दुःखित बना कर उसी अन्धकार में विलीन हो जाता है।

कुहू=अमावस्या; संज्ञा=ज्ञान; चैतन्य।

(पृ. ३३-३) कवि के प्रिय उन्माद की भाँति आए थे, क्योंकि उनको पा कर वह एक प्रकार की मादकता का अनुभव कर रहा है। उनका जाना कवि के समस्त ज्ञान के जाने के समान हो रहा है क्योंकि उनके चले जाने के बाद कवि को अपनी सुध-बुध भूल रही है। वह घबड़ाया हुआ पड़ा-पड़ा दुःखित हो रहा है, जैसे किसी का नशा उतर जाने पर उसकी दशा हो जाती है।

(पृ. ३४–१) कवि-हृदय के विस्तृत आकाश में उसके प्रिय विद्युत की द्रुतगति से आये और चले गये। अब केवल उनके विभिन्न रंगों (उनके द्वारा प्राप्त आनन्दों) की झलक-मात्र जो इन्द्र-धनुष की झलक के समान है, उनके जाने के बाद शेष रह गयी है।

(पृ. ३५–१) प्रिये की उन्मत्त बनाने वाली याद बादलों के समूह की भाँति पराग जैसे अश्रु-बुन्द गिराती हुई आती है। धीरे-धीरे कवि-हृदय इस वेदना का अभ्यस्त हो गया है। इसलिये स्मृति-रूपी बादलों द्वारा बरसाये गये जल से उसके हृदय उद्यान की कली अब खिल जाती है।

(पृ. ३५–२) कवि कहता है कि हे चन्द्र (चन्द्रमुखी प्रेयसी) तेरे प्रतिबिम्ब की स्मृति द्वारा बरसाये गये पराग-बिन्दुओं (आँसुओं) से यह हृदय हिम की बूँदों से भरा हुआ है। यह आँसू कवि के मनरूपी मन्दिर पर मोतियों के ढेर के समान लग जाते हैं।

(पृ. ३६–१) जब कवि के पास शीतल वायु आती है तो वह अनुभव करता है कि वह उसकी प्रेयसी का स्पर्श करके आ रही है। वह उस वायु के स्पर्श से काँप उठता है और आँसुओं की धार उसकी आँखों से बहने लगती है।

(पृ. ३६–२) रात्रि के समय जब चमेली-पुष्प सोते रहते हैं (मुरझा जाते है,) उस समय कवि कोमल उपधानों

(तकियों) के सहारे पड़े-पड़े किसी की (अपने प्रिय की) प्रतीक्षा करता रहता है जो सर्वथा बेकार होती है। उस प्रतीक्षा की बेचैनी में उसकी रात्रि आकाश के तारे गिनते-गिनते (बड़ी मुसीबत से) कटती है।

यहाँ (कोमल उपधान सहारे)--मालतियों का विशेषण भी माना गया है। तरु=उनके कोमल उपधान है।

--विनय मोहन शर्मा

मगर यह अर्थ आकर्षक नहीं है।

(पृ. ३६-३) कवि प्रिय की निष्ठुरता से खिन्न हो कर उसके छिप जाने पर (चले जाने पर) वियोगावस्था में प्रश्न करता है कि क्या उसका यह कार्य उचित है। वह कहता है कि प्रिय यदि चले गये तो चले जाएँ उसका भी कोई न कोई साथी तो मिलेगा ही। उसकी विरह की रातों में प्रिय से मिलने की बार-बार जागृत होने वाली आशा और परिणाम स्वरूप दुःख यह तो सदैव ही उसके साथ रहेंगे।

"हम दुखिया हैं, दु.ख ही है जग में हमारा,
मोड़ा मुँह सब ने हमें मुँह के लगाने में।"

--"कौशलेन्द्र"

(पृ. ३७-१) कवि जब उस मिलन की सन्ध्या का स्मरण करता है जब उसने प्रिय के दर्शन किये थे, तो वह

उसके सुख में ऐसा निमग्न हो जाता है कि उसे पता भी नहीं चलता कि उसका दुःख कब आरम्भ हुआ। सन्ध्या की शोभा देखने वाला व्यक्ति जिस प्रकार सूर्य की स्वर्ण-किरणों की छटा को देखता-देखता यह नहीं जान पाता कि रात्रि की काली चादर की घरी कब खुली, वही दशा कवि-हृदय की है।

(पृ. ३७–२) कवि-हृदय अपने प्रिय के रंग में ऐसा रँग गया है कि वह प्रयत्न करे तो भी वह छूट नहीं सकता। प्रिय की याद में बहने वाले आँसुओं से वह प्रेम का रंग धुल-धुल कर और भी सुन्दर बनता चलता है, हलका नहीं होता। यह रंग कैसा विचित्र है जो घुलने पर और भी गहरा होता है। (असंगति अलंकार)।

(पृ. ३८–१) कवि कहता कि उसके हृदय में अपने प्रिय के दर्शनों की कामना (इच्छा) ने उसे सफल चित्रकार बना दिया है। चित्रकला का उसमें विकास हुआ है और प्रिय की सुन्दर मूर्ति उसके हृदय के पर्दे पर उसकी इच्छा का स्वरूप धारण कर खिंच जाती है। उसके हृदय की अभिलाषा के कारण हृदय-पटल पर उसके प्रिय की कमनीय मूर्ति का चित्र खिंच जाता है।

(पृ. ३८–२) प्रिय से जब साक्षात् हुआ था तो उनका सुन्दर आनन (सरस जीवन का) मार्ग दिखलाने के लिए हाथ में लिए हुए मणि-दीप के सदृश आलोकमय प्रतीत होता था। अब वही सौन्दर्य अग्नि-समूह बन कर कवि-हृदय को

जलाए डाल रहा है। उस आनन के चारों ओर फैली हुई लटें ज्वालामयी किरणें बन रही हैं। उस समय तो उस आनन को देख कर हृदय आनन्द से भरता था, अब उसके स्मरण से दाह होता है।

(पृ. ३८–३) दुःख झेलते-झेलते कवि-हृदय उसका अभ्यस्त हो गया है। उसकी हृदय-रूपी वीणा जो अब तक (रूठी थी) अब और भी ऊँचे स्वरों में गायन करने लगी। अब तक उसके हृदय की वेदना ने उसे मूक बना रखा था परन्तु अब वह उस वेदना का वर्णन करने लगा। फिर भी इस वेदना को वह कोई बुरी वस्तु नहीं समझता। उसे अपनी लाचारी (दीनता) पर अभिमान (दर्प) है, और उसकी हृदय-रूपी वीणा उसकी पीड़ा का वर्णन अब साहस के साथ करती है। कवि को अब अपनी वियोग-वेदना से भय नहीं मालूम होता।

(पृ. ३९–१) कवि कहता है कि उसके प्रिय के प्रति जो अनुराग था, उसका पहले उसके प्रिय ने खूब स्वागत किया। जब उनका जी ऊब गया तो उन्होंने प्रेम से रँगी हुई आँखें दिखला कर वह अनुराग वापस कर दिया। लाल आँखें दिखलाना क्रोध का पर्याय है––आँख फेर लेना––निष्ठुरता से विमुख हो जाना है। लाल आँख शराब के नशे से भी हो जाती हैं। अपने हृदय के अनुराग को कवि ने तीव्र मदिरा के रूप में देखा है, जिसे उसके प्रिय ने मन भर कर पिया। तृप्ति हो

जाने पर (जब आँखों में अनुराग का नशा छा गया) तो वह अनुराग-रूपी मदिरा प्रिय ने उसे ही लौटा दी, (उसका प्रेम ठुकरा दिया।)

(पृ. ४०–१) कवि विचार करता है कि उसका जीवन इस प्रेम-पथ पर अग्रसर होने का कारण कैसा बन गया है। उसे अपनी जीवन-यात्रा कितनी कठिन प्रतीत हो रही है। वह अपनी जीवन-नौका के माझी (ईश्वर) से प्रश्न करता है कि वह उसे किस निर्जन किनारे पर (आनन्द-रहित वातावरण में) और किन लहरों में (मानसिक आघातों में) खे लाया है (घसीट लाया है)। क्या इस निर्जन स्थल में और भी कोई अब तक आया था ? क्या किसी दूसरे मनुष्य को भी ऐसी वेदना सहनी पड़ी थी ?

डाल दिया मुझ को कहाँ है भगवान हाय,
दुःखिया हुआ मैं इन दुःखियों में आने से।

—"कौशलेन्द्र"

(पृ. ४०–२) कवि जहाँ तक आ गया है, वहाँ से लौटना नहीं चाहता। उसके मन की जो दशा हो रही है, उससे वह सन्तुष्ट है। उसका विश्वास है कि वह प्रेम-पथ पर इतना अग्रसर हो चुका है कि पीछे लौटने में फिर कठिनाइयों का सामना करना पड़ेगा। इसी कारण वह जीवन की वर्तमान

दशा से सन्धि करता है। "ब्यूटी आफ़ लाइफ़ लाईज़ इन कम्प्रोमाइज़" उसे जीवित रहने की भी कोई विशेष अभिलाषा नहीं है, क्योंकि उसका जीवन कपट में छिपी हुई वेदना का ही दूसरा स्वरूप बन गया है। कवि कहता है कि अब यहाँ तक आ जाने के बाद फिर उस पार (पुरानी अवस्था में) क्यों जाऊँ, क्योंकि उसमें तो अन्धकार की मैली गोद फिर मिलेगी। इस किनारे पर उसके हृदय में प्रकाश है, कुछ सान्त्वना मिल रही है। जीवन की इस दशा में शांति है, पूर्वावस्था में जिसका अभाव रहा है। फिर क्यों पूर्वावस्था को चाहना चाहिए। इसीलिए वह इसी किनारे पर रहना चाहता है। अब उसे जीवन का लोभ नहीं है, क्योंकि जीवन स्वयं कपट में छिपाव से भरी हुई वेदना है, अथवा जीवन में प्रिय के छल द्वारा उत्पन्न की हुई वेदना ही छिपी हुई है।

छद्म—छिपाव; बहाना; कपट; प्रत्यावर्त्तन—लौट आना।

(पृ. ४१—१) कवि अगर लौट कर अपनी पुरानी अवस्था में पहुँचाना भी चाहे तो वह भी असम्भव है, क्योंकि पद-चिन्ह शेष नहीं है। जिस मरुस्थल में हो कर वह आया था, उसमें नदी की बाढ़ आ जाने से अब रास्ते का मिलना कठिन है।

कवि को अपने दुःख की प्रारम्भिक अवस्थाएँ एक-एक करके भूलती जा रही हैं, इसलिए यदि वह पुनः उनका अनुभव करना चाहे तो असम्भव है—अब तो उसका उजड़ा हुआ हृदय वेदना-जन्य आँसुओं की बाढ़ में डूबा जा रहा है।

कवि कहता है कि यदि वह वापस जाना चाहे तो कोई पद-चिन्ह शेष न होने के कारण वह ऐसा नहीं कर सकता। उसका हृदय (आनन्द रहित होने के कारण) रूपी मरुस्थल अब अश्रु-नद की बाढ़ में डूब रहा है। इसलिए अब वह छोटे-छोटे दुःखों को सोचता-सोचता पहले जैसी दशा में कभी नहीं पहुँच सकता।

१. अवकाश=रिक्त स्थान; आकाश; दूरी; अवसर; छुट्टी।

२. शून्य=ख़ाली स्थान; आकाश (वि.) ख़ाली।

३. अपदार्थ= तुच्छ; नाचीज़।

(पृ. ४१–२) इस समय कवि अपने चारों ओर रिक्त आकाश पाता है। न उसमें स्वयं शक्ति है और न किसी दूसरे का उसे सहारा है। ऐसी दशा में वह अपदार्थ (तुच्छ जीव) किस प्रकार पार लग सकता है। यदि कहीं किसी किनारे का पता भी चले, तो उसमें फिर वापस लौट जाने की शक्ति भी तो चाहिए। ऐसी दशा में जहाँ तक वह बढ़ आया है, उसे वहीं ठहरना होगा।

(पृ. ४१–३) कवि अपने जीवन की वर्त्तमान दशा की तुलना पहले की दशा से करता है। पहले भी उसकी जीवन-नौका अंधकारपूर्ण समुद्र में (भव-सागर) में चली जा रही थी, मगर उस समय प्रिय के मुख-चन्द्र से आकर्षित हो वह

पृथ्वी के पास हो आती थी। उस समय जीवन की कठिनाइयों में प्रिय के दर्शनों द्वारा कुछ आनन्द की प्राप्ति होती थी।

सिकता=बालू; बेगुन=गुण रहित; धर्म रहित; कला रहित; प्रवीणता रहित; बिना रस्सी की।

(पृ. ४२–१) परन्तु अब तो सूखे बालू के समुद्र में (आनन्द रहित जीवन में) कवि के मन की नाव को निर्गुण प्रेम रूपी नाविक आँसुओं की धारा बहाता हुआ आगे लिए चल रहा है। कवि-हृदय प्रेम-जन्य दुःख के कारण अब केवल आँसू बहाता है।

पारावार=हृदय-समुद्र।

(पृ. ४२–२) कवि के लिए यह संसार-समुद्र अब द्रवीभूत हो कर झाग उठा कर ज़हर उगल रहा है। उसे संसार में चारों ओर दुःख दृष्टिगोचर होता है। सुख पाने की तृष्णा से (अभिलाषा अथवा लालच से) इस संसार-समुद्र का उसने बहुत मंथन किया अथवा खोजा परन्तु उसके तल में (अन्तस्तल में) सर्वत्र वडवाग्नि को ही जलते पाया। तृष्णा की पूर्ति को ध्येय बना कर जब संसार-समुद्र का मंथन किया गया, तो केवल जलन ही हाथ लगी।

छायापथ=आकाशगंगा; संध्या का प्रतीक।

—विनय मोहन शर्मा

(पृ. ४२–३) कवि सोचता है कि उसकी विरह-जन्य श्वासें प्रलय उपस्थित कर सकती है। शीतल समीर मे मिल कर वे आकाशगंगा तक पहुँचेंगी और चन्द्रमा भी अपनी अन्तिम किरणें फैला कर सदैव के लिए अस्त हो जाएगा।

(पृ. ४३–१) उस समय प्रलय हो जाने पर कवि-आशा करता है कि उसकी आत्मा धूल के कणों में प्रेम की उत्कृष्ट चमक के कारण चमकेगी और सुगन्ध बन कर पवन में उड़ेगी। उस समय यदि किसी ग्रह अथवा नक्षत्र में प्रिया का पता लगा, तो वह उसी ग्रह के रास्ते में आकर्षित हो कर उस ग्रह से टकरा जाएगा और वहाँ अपने प्रिय को प्राप्त कर लेगा।

(पृ. ४३–२) इस (स्थूल शरीर वाले) मशीन जैसे जीवन में न जाने ऐसी कौन सी योग्यता थी––कौन सा गुण था जिसके कारण उसमें प्रिय के प्रेम की सजीव ज्योति सदैव प्रकाशवान बनी रहती थी। कवि को आश्चर्य होता है कि इस स्वार्थपूर्ण जीवन (स्थूल शरीर) में प्रेम के लिए त्याग के भाव कैसे समा गये।

(पृ. ४३–३) कवि कहता है कि उसके हृदय में प्रेम की शीतल किरण होने के कारण प्रिय का मुख-चन्द्र स्थायी रूप से उसमें निवास करता है। सौन्दर्य का अमृत सचमुच धन्य है, क्योंकि उसी सौन्दर्य-पान के लिए चकोर अंगार चुगता है और कवि-हृदय विरह की विषम-अग्नि सहन करता है।

दीपक के जलने का सम्बल (सहारा) स्नेह=(तेल) है।

पतंग के जलने का सम्बल स्नेह=(प्रेम) है।

दीपक को स्नेह में डूब कर जलते देख पतंग भी जलते समय प्रसन्न होता है।

(पृ. ४४–१) इसी सौन्दर्य के आकर्षण के कारण ही पतंग जलने का निश्चय करके दीपक से भेंट करता है। अपनी अन्तिम दशा में जब वह जलने लगता है तो फूल के समान खिल जाता है। प्रेम जब उसकी जीवन-लीला समाप्त करता है, तो उसे एक बार चमत्कृत भी कर देता है।

यूथिका=जूही; शतदल=कमल।

(तारों के मध्य चन्द्र को देख कर कवि के मन में प्रिया के मुख की स्मृति हरी हो जाती है। कदाचित् इस कारण उसका वियोग-जन्य दुःख बढ़ जाता है। इसलिए वह पूछता है कि वह मुख क्यों वहाँ आता है।)

(पृ. ४४–२) कवि-हृदय की विस्तृत सीमाओं रूपी आकाश में जो जही के वन के समान है तारागण-रूपी नाना चिन्ताएँ जूही के समान खिली रहती हैं। उन्हीं के मध्य में कवि के प्रिय का चन्द्र-मुख भी कमल के समान खिला हुआ आ कर क्यों मिल जाता है। (तारक-मण्डली के साथ जिस प्रकार चन्द्र के आने पर आकाश शोभा पाता है, उसी प्रकार चिन्ता ग्रसित हृदय मुख चन्द्र को पा कर उल्लसित होता है।)

यह कहना भूल है कि मन-रूपी कलिका का जीवन अल्प तभी है जब वह प्रेम-रूपी मकरन्द से भर कर खिल जावे और उसकी इच्छा न रहते हुए भी उसे अपने प्रेमी से पृथक होना पड़े।

(पृ. ४४–३) कवि कहता है कि ऐसा कहना भूल है कि कलियों के छोटे-से जीवन की सफलता इसी में है कि वे मकरन्द (पराग) से भरी हुई विकसित हों और बिना उनकी इच्छा होते हुए भी डाल से तोड़ ली जाएँ। (अन्योक्ति से) यह कहना भूल कि मनुष्य का वह जीवन सफल है, जिसमें वह स्वार्थ-सिद्धि में लगा हुआ अचानक किसी दिन बिना उसकी इच्छा होते हुए भी काल का ग्रास बनता है।

यदि मन-रूपी कलिका स्वल्प जीवन प्रिय के चिन्तन में व्यतीत हो और चुपचाप वह इसी चिन्तन में घुल-घुल कर अपना जीवन समाप्त कर दे, तो इसमें उसके प्रिय की क्या हानि हो सकती है ?

(पृ. ४५–१ कवि कालिका के उपर्युक्त जीवन से यह अच्छा समझता है कि उसका दो घड़ियों का (थोड़े समय का) जीवन कोमल पत्तों के बीच में ही समाप्त हो। यदि वह कलिका मनचाहा जीवन व्यतीत करती हुई किसी दिन चुपचाप गिर पड़े, तो इसमें किसी दूसरे की क्या हानि है। इसी प्रकार मनुष्यों का भी वह जीवन श्रेयस्कर है, जिसमें वे अपनी

अवस्था ललित कलाओं में संलग्न रह कर व्यतीत कर सकें और समय आने पर चुपचाप दुनिया से प्रस्थान कर दें।

(पृ. ४५–२) कवि-हृदय अपने प्रिय से कहता है कि उसने अपनी सब मनोकामनाओं-रूपी फूलों की अञ्जलि प्रिय के चरणों पर बिखेर दी। समस्त मनोकामनाओं का ध्येय एक मात्र प्रिय की चरण-रज प्राप्त करना बन गया। अब केवल एक ही प्रार्थना है कि इस सुमनाञ्जलि को (मनोकामनाओं को) कीट-सा तुच्छ समझ कर पैरों तले न कुचलो (मत ठुकराओ), क्योंकि इनके प्रत्येककण में थोड़ा या बहुत पराग (प्रेम) भरा हुआ है।

इन पंक्तियों में कवि अपने प्रिय का ध्यान संसार की अनित्यता की ओर आकर्षित करता है।

(पृ. ४५–३) संसार में कोई अमर नहीं है। निष्ठुर काल सबको हड़प लेता है। हाँ, उसके काले पर्दे पर जिससे वह सब कुछ ढँक लेता है कुछ अस्पष्ट हिसाब-सा जीवन के सुख और दुःख की रेखाओं से लिखा रह जाता है। मनुष्य-जीवन का उसकी मृत्यु के बाद कोई चिन्ह नहीं रहता। हाँ, उसके सुख-दुःख की चर्चा कुछ समय तक कहीं-कहीं चलती रहती है।

(पृ. ४६–१) इसी सुख और दुःख में उठते और गिरते संसार के सभी प्राणी किसी दिन विलीन हो जाएँगे। उस

समय वे पलट कर न देखेंगे कि इस में किस की भलाई है और किसकी बुराई है।

इन पंक्तियों में कवि अपने जीवन के दुःख को स्वाभाविक मानता हुआ उस पर संतोष करना चाहता है।

(पृ. ४६–२) कवि कहता है कि मनुष्य के जीवन रूपी वेदी पर विरह और मिलन दोनों का परिणय (विवाह) होता रहता है अथवा मनुष्य-जीवन में मिलन का सुख और विरह का दुःख दोनों देखे जाते हैं। दुःख और सुख मनुष्य-जीवन की वेदी पर नृत्य करते ही रहते हैं। मनुष्य के मन और आँखों का यही खेल है, यही मन-बहलाव है कि वह सुख और दुःख के नृत्य को देखा करे।

(पृ. ४७–१) प्रिय को सम्बोधित करता हुआ कवि कहता है कि उन्होंने अपनी पल भर झलक दिखलाई और उसके पश्चात् कवि के जीवन में रहने वाला समस्त सुख ले कर वे चुपचाप चलते बने। उनके वियोग में व्याकुल हो कर प्राण छटपटाते रहते हैं और आँसू बहाते हैं।

(पृ. ४७–२) प्रभात में जब ऊषा की लाली आकाश पर छा जाती है तो वियोगी होने के कारण उसकी शोभा से कवि को दुःख होता रहता है। वह अनुभव करता है कि उषा की कोमल शोभा में उसका दुःख छलक रहा है। उसे आश्चर्य

होता है कि ऐसा क्यों हो रहा है। वह अपने सुख को सन्ध्या की घने अन्धकार रूपी अलकों में उलझा हुआ पाता है। उसके दुःख का प्याला तो छलक रहा है, पर सुख अन्धकार में उलझ गया है। मतलब यह है कि उसे दुःख ही दुःख मिलता है। 'ऊषा की पलकों मे दुःख छलकता है से' तात्पर्य है कि प्रभात होते ही दुःख का राज्य प्रारम्भ हो जाता है। 'सुख सन्ध्या के घने अंधकार में' उलझ जाता है, का तात्पर्य यह है कि रात्रि भर सुख से भेंट नही होती। दिन-रात्रि दोनों दुःख में व्यतीत होते हैं।

(पृ. ४८–१) कवि अपनी प्रारम्भिक अवस्था का स्मरण करता है जब उसके मन में सुख और दुःख दोनों एक-दूसरे से मिले हुए थे, जिस प्रकार गालती के कुञ्ज में चाँदनी और अंधकार आपस में एक-दूसरे से मिले रहते है।

(पृ. ४८–२) कवि कहता है कि अवकाश (शून्य) जो सर्वत्र व्याप्त है असीम सुखों की कल्पना कर आकाश में आनन्द की लहरें उत्पन्न करता है, जिसके कारण आकाशगंगा में नक्षत्रों का समूह मुसकाता हुआ दिखलाई देता है। तात्पर्य यह है कि ईश्वर की सृष्टि में सुख और दुःख दोनों हैं, पर सुख आकाश की ओर खिंच गया है और दुःख पृथ्वी पर विद्यमान है।

(पृ. ४८–३) कवि कहता हैकि इस आकाश के नीचे विस्तृत पृथ्वी है, जो दुःख का भार सँभालती है।

इस पृथ्वी पर जो दुःख-जन्य अश्रु उत्पन्न होते है, उनसे खारे पानी का करुणा-समुद्र भरता है। पृथ्वी के जीवों के भाग मे दुःख की अधिकता है। खारे पानी से करुणा-समुद्र का भरा जाना स्पष्ट करता है कि पृथ्वी पर जितना विशाल अंश खारे पानी के समुद्रों का है, करुणा-समुद्र भी विशालता मे उससे कम नही है। अतीत काल से वह भरता चला आ रहा है।

(पृ. ४९–१) कवि कहता है कि पृथ्वी तो उससे दुःख मांग रही है और आकाश उससे सुख छीन रहा है। जिन दो वस्तुओं से उसका जीवन बना हुआ था, वे दोनों उससे छिन जाने के कारण वह अनुभव करता है कि उसने स्वयं को दूसरों को अर्पित कर दिया है। इस दशा म वह केवल अपने प्रिय के उस मुख का स्मरण करता हुआ शून्य भाव से बठा रह जाता है जिसके कारण उसकी यह दशा है।

(पृ. ४९–२) कवि को उस मुख के स्मरण के साथ पुनः अपनी सुखमय पूर्वावस्था का स्मरण हो आता है, जब कि उसे इतना सुख मिल रहा था जो आकाश, पृथ्वी और समुद्र में भी न समा पाता था। परन्तु उसे आश्चर्य इस बात पर है कि जिस सुख को आकाश, पृथ्वी और समुद्र मे नही भरा जा सकता था, वह उसके प्रिय की मुट्ठी मे कैसे बन्दी बन गया। उनसे विलग होते ही कवि को उस असीम-सुख का कहीं पता नहीं लगता, जिससे वह निष्कर्ष निकालता है कि सारा

सुख उसके प्रिय के साथ था और उनके कपटपूर्ण आश्वासनों (सान्त्वनाओं) में छिपा हुआ था।

(पृ. ४९–३) कवि अब प्रश्न करता है कि उसके प्रिय को उस से ऐसा कौन-सा दुःख प्राप्त हुआ था, जिसके कारण वे उसका सुख ले कर चुपचाप चलते बने। जिस प्रकार कोई प्रेमी अपनी प्रेयसी का उसकी सुप्तावस्था में चुम्बन ले कर चला जाए जब कि उसको चेतना आ ही रही हो, ठीक उसी प्रकार कवि के प्रिय उसे प्रेम-विभोर बना, उसकी चेतना लौटने के पूर्व ही उससे विलग हो गए।

(पृ. ५०–१) कवि कहता है उस समय जब वह अपने प्रिय के साथ था, जिस किसी वस्तु के अभाव में उसे दुःख होता था, उसे वह सुख मान लिया करता था। उस समय उसने यह न सोचा था कि जिस प्रकार बादलों में चपला निवास करती है, उसी प्रकार जीवन के साथ-साथ मृत्यु लगी हुई है।

(पृ.५०–२) कवि कल्पना करता है कि कदाचित् उसके प्रिय का सुख उसे दुःखित देखने में ही हो। वह कहता है कि उसके दुःख के पौधे के पत्तों के सिहरने से उसके प्रिय का सुख उन्मत्त हो कर नृत्य कर रहा है। कवि की करुणा का संयोग पा कर उसके प्रिय के शृंगार में और भी चमक आ गयी है। कवि की कल्पना है कि उसके प्रिय उसे दुःखित बना कर अपनी विजय के गर्व से प्रसन्न होते हैं।

(पृ. ५०–१) कवि कहता है कि सुख और दुःख दोनों से उदासीन बन कर अर्थात् न सुख में हर्षित न दुःख में दुःखित बन कर दुःख और सुख में मेल कराने का (समानता स्थापित करने का) वह प्रयास करेगा। जब उसे सुख अथवा दुःख किसी से ममता न रहेगी, तो संभव है दो रूठे हुए फिर मिल जाएँ। अर्थात् जब सुख और दुःख में उसे कोई भेदभाव न रहेगा तो संभव है कि वे दोनों फिर एक साथ रहने लगें। अभी तक सुख दूसरे के पास रहता है और दुःख उसके पास। इस प्रकार दोनों रूठे हुए हैं। जब वह दोनों की ममता की हानि उठाने को तैयार है अर्तात् दोनों में से किसी को भी प्रेम न करेगा तो यह संभव है दो रूठे हुए (अलग हुए सुख और दुःख) फिर मनाये जा सकें––(फिर साथ रह सकें।) सुख कवि के प्रिय के साथ है। सुख के दुःख के साथ आने का आशय उसके प्रिय से पुनः सयोग होने से भी है।

(पृ. ५१–१) जब कवि के लिए सुख और दुःख में कोई भेद नहीं रह गया तो वेदना उसे शान्तिदायिनी जलद-माला (मेघमाला) की भाँति प्रतीत होती है। वह चाहता है कि उसकी वेदना-रूपी मेघमाला आकाश तक फैल जाए––समस्त आकाश-मण्डल को ढँक ले, ताकि दिन में वह सूर्य के उग्र ताप से न जले और रात्रि में चन्द्र भी वेदना की मेघमाला में ढँका होने के कारण अपनी ज्योत्स्ना न फैला सके। कवि का वेदना से आच्छादित हृदय अब किसी भी प्रकार का प्रकाश सहना नही चाहता। उसे वेदना में ही सुख है।

नियति=प्रकृति ।

(पृ. ५१–२) स्वयं दुःखित होने के कारण कवि को सारा संसार दुःखमय प्रतीत हो रहा है। वह कहता है कि प्रकृति नर्त्तकी की भाँति नृत्य कर रही है––गेंद की भाँति खेल कर रही है––कभी ठोकर खा कर इधर जाती है––कभी उधर––शान्ति उसके लिए भी नहीं है। इस दुःख भरे संसार-क्षेत्र में वह अपने अशान्त (अतृप्त) मन को बहलाने का प्रयास करती रहती है।

विभ्रम=सन्देह; मदिरा=शराब ।

(पृ. ५१–३) कवि एक बार पुनः अपने प्रिय का आवाहन करता है। वह कहता है कि सन्देह रूपी मदिरा से उठ कर अथवा सन्देह का नशा छोड़ कर उसके प्रिय अन्धकार से भरे हुए हृदय में प्रवेश करें। वहाँ उनको कुछ न मिलेगा। बिना प्रिय के कवि का हृदय सूना घर है––उसमें खोजने पर भी सिवा उसके प्रिय के और कुछ न मिलेगा।

(पृ. ५२–१) कवि आशा करता है कि उसकी क्षीण आहों से आकर्षित हो कर उसके प्रिय अवश्य आएँगे और उसकी बढ़ी हुई व्यथा के प्रति समवेदना के अश्रु बहा कर उसे पुनः अपना बना लेंगे।

(पृ. ५२–२) कवि कहता है कि प्रत्येक संध्या के समय उसके प्रिय से मिलाप होने की आशा उसके हृदय में मनमाने

भावों को जन्म देती है लेकिन रात्रि भर प्रतीक्षा कर लेने के बाद जब ऊषा में लाली छाती है तो उन समस्त मनमानी कहानियों का अन्त हो जाता है, और घोर निराशा हाथ लगती है।

(पृ. ५३–१) कवि कहता है कि संसार में केवल वही दुःखी नहीं है––सारा संसार ही दुःखमय है। उसकी व्याकुल वेदना (सुख की खोज में) चौदह भुवनों का चक्कर लगा कर लौटी। उसे सुख कहीं भी न दिखलाई दिया। जिस प्रकार जब तक जीवन है तब तक विश्राम नहीं मिलता, उसी प्रकार जहाँ तक सृष्टि है––सुख का पता नहीं।

(पृ. ५३–२) विश्राम यदि कहीं है भी तो वह आहों और आँसुओं में थक कर सो रहा है। यदि संसार के किसी प्राणी को शांति मिली है तो रोते-कराहते थक जाने के कारण। वह शांति भी उसी प्रकार क्षणिक होती है जैसे कोई रोते-रोते निद्रा विभोर हो कर स्वप्न देखे।

'सो जावें का कर्त्ता वेदनाएँ मानना चाहिए।'

––विनय मोहन शर्मा

"हे रजनी, जब मेरे हृदय में ये मेरी व्यथाएँ थक कर सो जाएँ तो, धीरे-धीरे उनका मस्तक सहला देना, जिससे

उनका उन्माद दूर हो जावे। वे तेरी आभारी होंगी।"

--रामरतन भटनागर ए. ए.

(कवि प्रसाद--एक अध्ययन पृ. ९६)।

(पृ. ५४-१) कवि कहता है कि रात्रि में उसके प्रिय उसके हृदय में निवास करते हैं--सोते है परन्तु जहाँ वह सोते हैं वह हृदय व्यथा के बोझ से दबा हुआ है--वहाँ इस कारण संभव है उनको शांति न मिले। इसलिए वह रात्रि से प्रार्थना करता है कि वह उनके सुनहले उन्माद को (प्रिय की सुन्दर अशांति) को सहला कर (थपकियाँ दे कर सुला कर) सुख-दायिनी निद्रा में बदल देवे।

(पृ. ५४-२) कवि रात्रि का फिर आह्वान करता है और उससे प्रार्थना करता है कि संसार को निद्रा से विभोर कर दे ताकि व्यथित जनों को कुछ शांति मिल सके। वह कहता है कि हे रात्रि, जिसका अनुभव हम बिना उसका स्पर्श किए ही नित्य प्रति करते हैं, तुम स्वर्गोद्यान के तमाल वृक्षों के नीचे से आ कर समस्त संसार में काली बेलों के समान फैल जाओ, ताकि सब लोग निद्रा में विभोर हो कर श्याम-लता के पल्लव की भाँति प्रतीत हों।

(पृ. ५४-३) हे रात्रि सुप्त प्राणियों को तुम्हारे तारा-गण स्वप्न में खिली हुई सोनजुही के समान प्रतीत हों और

स्वर्गंगा की धारा में जो विशाल तारक-समुदाय दिखलाई देता है, वह श्वेत-कमलों से भरा हुआ प्रतीत हो।

(पृ. ५५–१) हे रात्रि, सोते हुए संसार के ऊपर चारों ओर फैले हुए आकाश में नीलिमा (नीला रंग) विराजती है। इसी नीलिमा से विस्मृति रूपी नीले कमल का रस ले कर अपनी आँख के कोने से मेघ के समान बरसा दो। यहाँ रात्रि से आँख के कोने से विस्मृति-रस बरसाने में कवि ने आँसू से समानता स्थापित की है। जिस प्रकार आँख के कोने से आँसू बरस कर बहुत-सी वेदना भुला देते हैं, उसी प्रकार आकाश से रात्रि विस्मृति-रस बरसा कर सोते हुओं की बहुत-सी वेदना भुला देती है।

(पृ. ५५–२) कवि को आश्चर्य होता है कि यह पृथ्वी जो उजाले में सदैव दुःख झेलती हैं, फिर भी क्यों आलोक माँगती है। उसकी यह माँग कवि की दृष्टि में उसे उन्मादिनी बना देती है और वह रात्रि से प्रार्थना करता है कि वह अंधकार की ओस की छोटी बूंदें बरसा दे ताकि यह अब भी सो सके––शांति प्राप्त कर सके।

इन पंक्तियों में लेखक का संकेत आधुनिक सभ्यता के प्रस्तार से सताए हुए मानव को शांति की खोज में पुनः प्राचीन युग के आदर्शों की ओर जाने का है।

यहाँ समाधि से तात्पर्य योग की उस दशा से है जिसमें मनुष्य सब कुछ भूल कर क्लेशों से मुक्त हो जाता है। कवि का तात्पर्य है कि अब भूलते-भूलते वह समाधि की दशा में पहुँच जाएगा, तब उसके नेत्रों से सुख के अश्रु निकल पड़ेंगे जो मंगलकारक बादलों की वर्षा के समान होंगे।

(पृ. ५५–३) कवि कहता है कि विस्मृति की समाधि पर जब कल्याण-बादलों से वर्षा होगी तभी सुख भी थक कर सो सकेगा––स्थाई रह सकेगा और दुःखों की चिन्ता भी छूट जाएगी। अर्थात् पुरानी व्यथा को भूल जाने पर ही मानव को सुख प्राप्त होता है।

सर्ग=उद्गम।

(पृ. ५६–१) कवि चाहता है कि रात्रि ऐसी विस्मृति का जाल फैलाए कि वह प्रगाढ़ निद्रा में निमग्न हो कर अपना सब कुछ भूल जाए। उसमें चैतन्यता की लहर उठे ही नहीं। अपनी पुरानी व्यथा का उसे होश ही न आए। तभी उसके जीवन––समुद्र में शांति आ सकती है। उस रात्रि की संध्या उसके लिए प्रलय का प्रारंभ होगा––महान परिवर्त्तन का समय होगा, और उसी समय उसका बिछुड़े हुओं से मिलाप होगा। सब कुछ भूल कर भी वह उतना ही सुखी होगा, जितना बिछुड़े हुए से मिल कर होता।

(पृ. ५७–१) कवि की वेदना पुरानी हो गयी है। उसके आँसू अब आँखो मे ही सूख जाते है। कवि उसका सादृश्य अंधकारपूर्ण रात्रि मे देखता है, जिसमे धुंधले तारागण उसे रात्रि के रो कर थके हुए नेत्र प्रतीत होते है और उनसे जो क्षीण आलोक आता है वह उनके अश्रु-बुन्द के समान हैं। मगर इन क्षीण आलोक रूपी आँसुओं का कही पता नहीं चलता, क्योकि अन्धकार का काला कपट-व्यवहार इनको चुप-चाप पी लेता है। यह क्षीण आलोक अन्धकार में विलीन हो जाता है।

(पृ. ५७–२) कवि अपने चुपचाप रोने वाले (बिना अश्रु बहाए रोने वाले) हृदय को लक्ष्य करके कहता है कि जब संसार-उसने दुःख मे जो सुख मान लिया है, उसका निरादर करता हुआ उस पर व्यंग्य की हसी हँस रहा है, तो उसे चुप-चाप न रोना चाहिए। इसमे उसकी पराधीनता प्रकट होती है। उसे हँसने वालो को हँसने देना चाहिए और अपने आँसुओं को उन्मुक्त बहाना चाहिए।

(पृ. ५८–१) कवि कहता है कि आँसू की शोभा तो उसके गिरने में ही है। इसलिए उनकी अञ्जलि को आँखों में भर कर क्यों पिया जावे। उनको गिरने ही देना चाहिए। आँखों में उनको रोक लेने से उनका प्रभाव कम होता है। जब आकाश से कोई नक्षत्र टूटता है, तो गिरते समय बहुत आलोकमय बन कर ही विजय-लाभ करता है। उसी

प्रकार आँसू भी आँखों से गिर कर अपना प्रभाव दिखला सकते हैं।

(पृ. ५८–२) प्रियतम की व्यंग्यपूर्ण हँसी और अपने वेदना-जनित अश्रु दोनों के घुलने-मिलने से कवि नई आशाएँ रखता है। वह कहता है यदि दूसरे लोग हँसते हैं, तो हँसें परन्तु इस कारण अश्रु-प्रवाह को न रुकना चाहिए। अश्रुओं की (बरसात) नयी झड़ी लगने दो और उनसे नवीन आशा-रूपी कलियाँ विकसित होने दो।

(पृ. ५८–३) कवि अपने हृदय से कहता है कि जब उसने वेदना को अपनाया ही है तो उसे पृथ्वी के कण-कण से जागरूक वेदनाओं को चुन-चुन कर एकत्रित कर लेना चाहिए। यदि वह ऐसा करेगा तो संसार में उसके साहस की लोगों का मन बहलाने वाली कहानियाँ कहने के लिए शेष रह जावेंगी।

(पृ. ५९–१) कवि के हृदय में वेदना की ज्वाला निरंतर जलती रहती है। चाहे रात्रि हो या दिन, बरसात हो या शीत, उस ज्वाला से उस व्यथित हृदय को छुटकारा नहीं। जब रात्रि के नीले अंचल में (घोर अंधकार में) चन्द्र देव थक कर सो जाते हैं, अथवा संध्या होने पर जब सूर्यदेव अस्ताचल की घाटी में विलीन हो जाते हैं, अथवा जब तारागण स्वर्गंगा की धारा में डूब जाते हैं अर्थात् अँधेरी रात्रि में जब नक्षत्रों का समूह स्वर्गंगा की धारा में विलीन हो जाता है और जब बिजली भी अपनी चमक न दिखला कर मेघ-

मालाओं की कैद में बन्द हो जाती है--अर्थात् जिस समय प्रकाश के सभी प्राकृतिक साधन अपना प्रकाश खो बैठते हैं--उस समय भी कवि के हृदय की ज्वाला समस्त संसार को घर समझ कर उसे आलोकित करने के लिए मणियों के दीप के समान-किरणों की माला पहने हुए अकेली जलती रहती है।

प्राचीन हिन्दू विश्वास है कि सूर्य सन्ध्या समय अस्ताचल के पीछे चले जाते हैं।

कादम्बिनी=मेघमाला।

(पृ. ५९–२) कवि अपने हृदय की ज्वाला की तुलना समुद्र की उस वाडवाग्नि से करता है, जो समुद्र में ज्वार आने पर (उत्ताल-जलधि वेला में--समुद्र के ऊँचा होने का समय), जब कि मौन आकाश के नीचे समुद्र अपना सिर पर्वत की भाँति ऊँचा उठाता है (जब कि लहरें बहुत ऊँची उठ जाती हैं)-- तब भी, उसके अंतरतम में जलती रहती है।

(पृ. ६०–१) कवि कहता है कि समस्त संसार की वेदनाएँ कुछ क्षण लिए शान्त हो जाती है, परन्तु उसके हृदय की ज्वाला जलती ही रहती है। कवि विश्व की वेदना को एक बाला के रूप में देखता है, जो प्रकृति का इशारा पा कर रात्रि के अंधकार में अपना जीवन उलझाए हुए--अथवा अंधकार से घुलमिल कर किसी अँधेरी कंदरा में अपनी सदैव चंचल

रहने वाली लटों को फैलाए हुए सोती रहती है। जिस समय संसार के लिये ज्वालामुखी के समान वह वेदना-वाला भी सोती रहती ह, उस समय भी सदैव कवि के हृदय की ज्वाला जलती रहती है।

(पृ. ६१–२) कवि वेदना से सताये हुए संसार की तुलना एक वृक्ष से करता है, जिससे सुख-रूपी पत्ते झड़ गये हों, और जिन पत्तों की सुन्दर होली के समान वह हृदय की ज्वाला जल रही है। वेदना की ज्वाला अति आज्ज्वल्यमान होने के कारण कवि उसे अरुणा कह कर सम्बोधित करता है, (वेदना की ज्वाला सदैव ही अपने (ज्वाला के) प्रिय के हृदय में (दुःखी मानव के हृदय में) विद्यमान रहती है, इसलिए कवि उसे सदैव सौभाग्यवती रहने वाली कहता है।) जिस प्रकार सौभाग्यवती स्त्रियाँ अपने मस्तिष्क पर सिंदूर लगाती हैं, उसी प्रकार यह वेदना की ज्वाला सदैव सौभाग्यवती रहने वाली है और मनुष्यता के सिर पर लगने वाली रोली के समान है। सदा सुहागिन से तात्पर्य उसके चिर-स्थायित्व से है। वेदना की ज्वाला मनुष्य का सदैव साथ देगी। इसलिए वह उसका सौभाग्य चिन्ह है।

(पृ. ६१–३) जिस प्रकार समुद्र में वड़वाग्नि जलती है, उसी प्रकार कवि के जीवन रूपी समुद्र में यह वेदना की ज्वाला पवित्र वड़वाग्नि की भाँति जलती है। कवि आशा करता है कि यह ज्वाला उसके हृदय का सारा पाप जला

देगी, इसलिए उसे अग्नि की देवी के समान जलने को कहता है।

परिणय=विवाह; द्वन्द्व=जोड़ा;

(पृ. ६२–१) कवि कहता है कि संसार में जोड़ों के (स्त्री-पुरुषों) विवाह होते हैं, उनके परिणाम स्वरूप वेदना की ज्वाला को प्रोत्साहन मिलना अवश्यम्भावी है, इसलिए वेदना की ज्वाला सुगन्धपूर्ण जयमाला के समान है, जो विवाह के अवसर पर वधू अपने वर को पहनाती है। सारांश यह है कि प्रणय का परिणाम वेदना है। परन्तु कवि अब उस वेदना की ज्वाला का अभ्यस्त हो गया है। उसे इसी ज्वाला की जलन सुखप्रद होती है अतएव वह चाहता है कि उसकी ज्वाला समस्त संसार को अपनी किरणों रूपी पराग-रज से भर देवे अथवा समस्त संसार को सुखदायिनी सिद्ध हो।

(पृ. ६२–२) कवि कहता है कि उसके हृदय की ज्वाला के प्रकाश मे वेदना से सताया हुआ संसार चैतन्य लाभ करता है। और उसकी ज्वाला का दयापूर्ण प्रकाश पा कर वह कवि के समीप आ जाता है। सारांश यह है कि कवि की वेदना का परिचय पा कर दुःखी संसार कवि के साथ आत्मीयता का अनुभव करने लगता है।

(पृ.६२–३) कवि कहता है कि वेदना की ज्वाला के प्रकाश में धुँधली छायाएँ (छोटी-मोटी वेदनाएँ) अपना परि-

चय देती हैं--सामने आती हैं, परन्तु इस बड़ी व्यथा के सामने उनका कुछ प्रभाव नहीं पड़ता। उनके द्वारा वेदना-जन्य रोदन का मूल्य अवश्य चुकाया जाता है, क्योंकि अब उनसे किसी प्रकार का कष्ट नहीं होता। यदि वे अकेले-अकेले सामने आतीं तो दुःखदायी सिद्ध होतीं--उनके लिए भी विलाप करना पड़ता परन्तु अब कुछ चिन्ता नहीं अतएव इस परिस्थिति में वे सब प्रकार से अपनी ही प्रतीत होती है, और पुराने विलाप का मूल्य-सा चुकाती हैं।

(पृ· ६३–३) कवि अपने हृदय की ज्वाला को अब शीतल और कल्याणकारी समझता है और आशा करता है कि निष्ठुर संसार को इससे कुछ प्रकाश मिले, जिससे उसका मंगल हो। वह समझता है कि जिन परिस्थितियों में उसे दुःख झेलना पड़ा है--संसार उनको पहचाने और उनसे सावधान रह कर अपना कल्याण करे।

(पृ. ६४–१) कवि कहता है कि जिस प्रिय के सामने पुलकित हो कर (प्रसन्नता के आवेग में आ कर) जीवन सिसकियाँ भरता है (आनन्दाश्रु बहाता है)--जिसको पा कर मृत्यु (खिलवाड़ प्रतीत होती है)--नृत्य करती हुई जान पड़ती है, अमरत्व सामने हँसता-सा प्रतीत होता है, उन्हीं प्रेम से हँसते हुए प्रिय से कवि के मधुवन में (मन में) जागने की प्रार्थना है जिससे उसके जीवन में फिर सुकुमार कल्पनाओं को स्थान मिल सके। कवि दुःख झेलते-झेलते आशावादी हो गया

है। जिस प्रकार अन्धकारपूर्ण रात्रि की समाप्ति पर दिन निकलता है--सूर्योदय होता है--मधुवन में खगवृन्द जाग कर कलरव करते हैं, उसी प्रकार कवि भी आशा करता है उसके प्रिय पुनः दर्शन देंगे, जिनको पा कर वह मृत्युमय को भूल जाएगा और अमरत्व का आनन्द पाएगा।

(पृ॰ ६५–१) कवि कहता है कि उसके प्रिय जो अच्छी मुद्रा से (आनन्द से) सो रहे हैं। अब उसकी आहों के प्रभाव से जाग जाएँ, जिनके अधरों में मुसकान है और आँखों में आँसू। कवि की वेदना पर उनकी आँखों में अश्रु आ सकते हैं और हँसना तो उनका स्वभाव ही है। सारांश यह है कि जिनके अधरों पर मुसकान विराजती है, ऐसे प्रियतम जो सुख-निद्रा में निमग्न हैं, उसकी आहें देख कर जाग जाएँ और रो पड़ें।

(पृ॰ ६५–२) कवि कहता है कि उसके सुख-स्वप्नों की सृष्टि के सच्चे जीवन के समान उसके प्रिय जागें। वे सर्व-सुन्दर (सुन्दरतम) प्रिय (प्रभात की) मंगल (आनन्ददायी) किरणों से आलोकित (रञ्जित) हो कर जाग जाएँ। कवि की कल्पना है कि उसके प्रिय जो सम्प्रति सोते रहे हैं (उससे उदासीन रहे हैं) अब जागेंगे अर्थात् उसकी ओर आकृष्ट होंगे।

(पृ॰ ६५–३) कवि जब अपने सुप्त (उदासीन) प्रियतम से जागने की) पुनः उसकी ओर आकृष्ट होने की) आशा करता है तो उसे प्रभात में मानसरोवर में खिलने वाले कमलों और

उन पर भ्रमरों की गुञ्जार का स्मरण हो आता है। वह अपनी अभिलाषा को मानसरोवर के रूप में देखता है और उसमें अपने प्रिय से अपनी कमल-जैसी आँखों के खोलने की प्रार्थना करता है। साथ ही साथ उनके अधर-रूपी भ्रमरों से (मधु) मीठा गुञ्जार करने की भी प्रार्थना करता है—पक्षियों के कलरव की भाँति उनसे कुछ बोलने को कहता है। अधरों की मधुपों से समानता दोनों के मधुपायी होने के कारण है, तथा दोनों का कार्य गुञ्जार करना भी समान है। वह आशा करता है कि प्रिय के उसकी ओर पुनः आकृष्ट होने पर तथा बातचीत करने पर उसको मानसरोवर में कमलों पर भ्रमरों की गुञ्जार सुनने के समान सुख होगा।

(पृ. ६६–१) कवि अपनी निराशा में उत्पन्न हुई आशा को नीले आकाश के रूप में देखता है जहाँ सूर्य आ कर उसे प्रकाश से भर देता है। जब तक निराशा थी, आकाश अंधकारपूर्ण और काला था। अब आशा नीले आकाश के समान अपना सूना अञ्चल फैला रही है। जिस प्रकार आकाश के सूने अंचल में सूर्य स्वर्ण की सृष्टि करता है उसी प्रकार प्रिय की करुणा (दया-भाव) चंचल बने, और प्रिय उस आशा के सूनेपन को दूर कर दें अथवा आशा पूरी कर दें।

(पृ.६६–२) कवि कहता है कि हे प्रिय, आपके जागने से पराग (प्रेम-रस) की सृष्टि हो कर आनन्द फलेगा इसलिए आप जाग जाइए। जिस प्रकार कोमल-कुसुमों के वन

में पराग-उत्पन्न होता है, उसी प्रकार कवि की युवावस्था में पुनः प्रेम-रस रूपी पराग हो सकेगा।

(पृ. ६६–३) प्रति दिन के गहन अंधकार में आकाश पर तारागणों की चमक रहती है और प्रभात में वे तारागण भी विलीन हो जाते है––उस समय नभ खाली प्याली के रूप में दिखलायी देता है। संसार उस खाली प्याली को ले कर कुछ पराग बिन्दु की भिक्षा माँगता है, जिसके परिणाम स्वरूप कमलों और पुष्पों में पराग की सृष्टि होती है, और पृथ्वी पर ओसकण भी दिखलाई देते है। इस पराग-रूपी मदिरा को पी कर संसार की आँखों में पुनः कुछ लाली छा जाती है, जिसे हम पूर्व दिशा में प्रभात में देख सकते है। इस प्रकृति के प्रति-दिन के खेल का स्मरण करता हुआ कवि कहता है कि उसके प्रिय जागें ताकि वह भी संसार के समान खाली प्याली ले कर उनसे कुछ प्रेम-रस रूपी पराग की भिक्षा माँगे, जिससे उसकी लाली (प्रसन्नता) पुनः लौट आए।

(पृ. ६७–१) कवि प्रति दिन देखता है कि प्रभात से पूर्व अंधकार और उजाले का जब झगड़ा होता है तो नवीन ज्योति विजय प्राप्त करती है। उस नवीन ज्योति को प्राप्त कर संसार हँस पड़ता है और ओस-बिन्दु रूपी सुन्दर मोती चारों ओर बरसाए जाते हैं। उसी प्रकार वह आशा करता है कि उसके दुःख रूपी अन्धकार और सुख-रूपी उजाले के

झगड़े में एक नवीन-ज्योति (एक नया आनन्द) विजय प्राप्त करेगी जिससे कवि की दुनियाँ प्रसन्न हो कर आनन्दाश्रु-रूपी मोती बहाएगी।

(पृ. ६७–२) कवि अपने प्रियतम को अब समस्त सुन्दर दृश्यों मे देखने की अभिलाषा करता है। अब तक उसके प्रिय सुन्दर थे, इस कारण वह उनकी ओर आकृष्ट हुआ था––अब समस्त सुन्दरता को ही वह अपना प्रिय मान लेता है। वह कहता है कि पूर्व दिशा की प्रभातकालीन करुणा आभा की सुन्दरता-रूपी दर्पण मे वह अपने प्रिय का प्रतिबिम्ब देख सकेगा। उस अलसाई हुई ऊषा के सौन्दर्य म भी वह अपनी आँखों का तारा (सर्वप्रिय वस्तु) देख सकेगा।

ऊर्मिल=तरंगित=लहराता हुआ।

(पृ. ६७–३) कवि आशा करता है कि प्रभात के सौन्दर्य म वह कुछ ऐसी रेखाएँ देख सकेगा, जिनमे वह अपने प्रिय के चेहरे को उलझा हुआ पाएगा। उस सौन्दर्य में जो उसके प्रिय की उलझी हुई झलक मिलेगी, वह भी उसे कितनी आनन्ददायिनी सुलझी हुई रचना के समान प्रतीत होगी। (असगत अलकार)।

(पृ. ६८–१) उस (प्रभात के) सौन्दर्य में कवि देखेगा कि स्त्रियों की स्वाभाविक सुन्दरता इठलाती हुई घूम रही है

और शिशु की हृदय-हारिणी स्वच्छता उसमें छलकती हुई दिखाई देगी ।

(पृ. ६८–२) उस ऊषाकालीन सौन्दर्य की शोभा आँखों के लिए निधि के समान होगी—उस पर नीले आकाश का पर्दा पड़ा होने से वह लज्जा-शीला वधू के मुख के समान प्रतीत होगी । उसे देख कर कवि का शिथिल (मुरझाया हुआ) हृदय प्रसन्न हो कर विकसित हो जाएगा ।

(पृ. ६८–३) कवि कहता है कि प्रकृति में उसने जिस सौन्दय को अपने हृदय का आराध्य माना है उसका प्रतिबिम्ब पवित्र हो और स्थाई हो । उससे अनन्त (कभी न समाप्त होने वाला) यौवन-पराग झरता रहे और वह कभी न कुम्हलाने वाले स्वण-कमल के समान शोभावान रहे ।

(पृ. ६९–१) कवि कहता है कि 'अखिल जीवन की कल्पना दृग-तारा का किरणा स आलाकमयी धारा की प्रतिनिधि बन अभिषक करे' । कवि जिस सौन्दर्य को प्रकृति में अपन प्रिय के रूप मे देखता ह, उसका अभिषक करना चाहता है, उसे अपने हृदय के सिहासन पर बिठला कर अपनी आँखों की पुतलियों को ज्योति से (किरणो से) उसे बार-बार निहार कर अपने समस्त जीवन की निधि के रूप में उसकी कल्पना करता है । जिस ज्याति से वह इस सौन्दर्य को निहारता है उसे वह आलाकमयी धारा (ईश्वर की प्रकाशपूर्ण ज्योति)

का प्रतिनिधि समझता है। कवि की आशा है कि इस सौन्दर्य का हृदय में ज्योतिर्पुञ्ज भगवान की ज्योति के प्रतिनिधि द्वारा अभिषेक हो जाने पर, उसका समस्त जीवन आनन्दप्रद हो जाएगा।

(पृ. ६९–२) कवि आशा करता है कि उस प्राकृतिक सौन्दर्य को हृदय में स्थान देने के उपरांत उसकी वेदना मधुर हो जाएगी। उसकी तन्मयता (उसका अनन्य प्रेम) जिसने सम्प्रति निष्ठुर बन उसे भटकाया था, अब मृदुल रूप धारण कर लेगी। हृदय को अब सहृदयता मिल जाएगी। वह एक सहृदय व्यक्ति की भाँति भावी जीवन-पथ पर अग्रसर हो सकेगा।

अनामिका–संगिनि=अँगूठी।

अनामिका=छिंगुनी के पास की अँगुली।

(पृ. ६९–३) कवि कहता है कि जिस सौन्दर्य को उसने प्रकृति में अपना प्रिय बनाया है, उसकी कोमलता उसकी स्थायी सहेली ठीक उसी प्रकार बनी रहे, जिस प्रकार अनामिका की प्रेम-चिन्ह रूप दी गयी अँगूठी उसकी साथी है। उसकी कोमलता जो सुन्दर होते हुए भी वियोगावस्था में कठोर बन जाती है, अब उसकी आँखों के सामने से दूर न हो। कवि और उसके प्रिय का सौन्दर्य दोनों मित्र बन कर ही जीवन-मार्ग पर साथ-साथ आगे बढ़ते रहें।

(पृ. ७०–१) वेदना को चिरसंगी बना कर कवि ने बहुत समय व्यतीत कर दिया है। अब वह एकान्त में बैठ कर हिसाब लगाता है कि उसने कितना समय इस प्रकार रोने-कलपने में व्यतीत कर दिया। वह सोचता है कि न जाने कितनी ताराओं से भरी हुई रातें उसने तारे गिन-गिन कर काट दीं; कितने दिन, कितनी घड़ियाँ––वे निष्ठुर-काल की शृंखलाएँ-न जाने कितनी व्यतीत हो चुकीं––अब उनको याद करना भी सम्भव नहीं। इतना बहुत समय अब तक विस्मृति में विलीन हो चुका। कवि ने वेदना को अपना कर बहुत-सा समय यों ही व्यतीत हो जाने दिया।

(पृ. ७०–२) कवि का विश्वास है कि इतना समय व्वतीत हुआ तो हुआ। यह उसकी लाचारी थी फिर भी मन में जो ऊँची-ऊँची लहरें उठ रहीं थीं और उठती रहती है, वे मन की सीमा में ही समा कर नहीं रह जातीं। उसके मन की लहरें अनन्त के छोर तक जा कर उस छोर को नहला सकती है। कवि कहता है कि उसके मन की वेदना बाहर अपना प्रभाव दिखलाए बिना न रहेगी। उसकी लहरें अनन्त तक पहुँच कर प्रिय को द्रवीभूत कर, उनके लोचनों से अश्रु-बुन्द गिरवा कर उनको अवश्य नहला देंगीं।

(पृ. ७१–१) कवि कहता है कि जिस शीतलता (कोमल भावना) का स्पर्श पा कर आँखों के कोनों में जल भर आता है, उसी शीतलता की उसकी आँखों को जो दया रखने के लिए

होने के समान है, सदा प्यास लगी रहती है। साधारण दोने पत्तों में सींक लगा कर बनाए जाते हैं, जिनमें कोई भी द्रव भरा जा सकता है। कवि की आँखें दया-रूपी द्रव भरने के लिए बनाए गये दोनों हैं, जो सदैव उस भावना के प्यासे रहते हैं (अथवा उस भावना का स्पर्श करने को लालायित रहते हैं) जिससे उनमें तुरन्त ही जल भर आए।

मधुमाया=मधुर छल।

(पृ. ७१–२) कवि हृदय उस शीतलता (कोमल भावना) को प्राप्त करना चाहता है, जिसे पा कर उसके हृदय के फेनिल उच्छ्वास पुनः सुख-स्वप्नों के मधुर छल में प्रतिबिम्बित होएँ जो अन्यथा निद्रा-निमग्न आँखों की बन्द पलकों की सुखदायिनी छाया में अपने सुकुमार स्वरूप को छिपाए सोते रहते हैं। फेनिल का तात्पर्य झाग उठाते हुए से होता है। उच्छ्वास तभी फेनिल समझे जा सकेंगे जब उनके साथ-साथ अश्रु-वर्षा भी हो। कवि-चाहता है कि कोमल भावनाएँ उसके हृदय में आनन्दातिरेक उत्पन्न करें, जिससे उसके हृदय के उच्छ्वास फेनिल बनें।

(पृ. ७१–३) इन आँसुओं की वर्षा से सींचा जाने के पश्चात् कवि और उसके प्रिय दोनों के नदी के दो किनारे-रूपी जीवन हरे हों (सुखमय हों)। जिस प्रकार शरद ऋतु में सरिता निर्मल जल से भर जाती है, उसी प्रकार इन दोनों

के जीवन में भी आनन्द-रूपी निर्मल जीवन-द्रव भरा हुआ है।

(पृ. ७३–१) जिस प्रकार नदी के किनारे खड़ा हुआ व्यक्ति किसी भी स्थल पर हो, चन्द्रमा के उजाले में बहते हुए स्वच्छ जल का प्रवाह अपने सामने देखा करता है, उसी प्रकार कवि आशा करता है कि अपने प्रिय को पा कर वह अपने जीवन की आलोकमय (आनन्दमय) प्रगति जीवन-रूपी नदी के किनारे प्रत्येक स्थल पर (जीवन में हर समय) देख सकेगा।

(पृ. ७२–२) कवि कहता है कि उसी प्रकार उसके प्रिय का जागरण (उसकी ओर पुनः आकर्षित होना) अपनी उज्ज्वलता दे कर (हर प्रकार का आनन्द दे कर) आनन्दाश्रु की इन छोटी-छोटी बूंदों से भी सारा मैल (दुःख) हर लेता है।

(पृ. ७२–३) कवि कहता है कि उस समय जब कि उसके प्रिय से साक्षात् होगा तो उसकी आँख-रूपी छोटी-सीपी में रत्नाकर १. सरत्नों का खज़ाना––क्योंकि अनेकों मोती रत्न बहते हैं––२. समुद्र––क्योंकि पानी की असंख्य बूंदें गिरती हैं) खेलता हुआ दिखलाई देगा। सीपी में समुद्र का खेलना एक अद्भुत बात है, मगर कवि ने उसे स्वाभाविक बना

दिया है । उस समय आँखों से जो करुणा-बुंद (अश्रु-कण) प्रवाहित होंगे——उनके द्वारा आनन्द वहेगा ।

ऊर्मि १. लहर २. पीड़ा ।

ऊर्मिल=१. तरंगित २. दुःख से भरा हुआ ।

(पृ. ७३–१) कवि कहता है कि जिस समय उसे जीवन-समुद्र में दुःख-रूपी अंधकार छा जाने से पीड़ा-तरंग उत्पन्न होगी, उस समय उसके प्रिय का प्रकाश-दीप की भाँति उसके सामने चमकने लगेगा । आकाश-दीप कवि द्वारा लिखी गयी एक कहानी है, जिसकी प्रधान-नायिका भटकते जहाज़ों को ठीक मार्ग पर लाने के लिए आकाश-दीप रात्रि के अंधकार में जलाती है । यहाँ भी कवि अपने जीवन को समुद्र के रूप में देखता-देखता नौका के रूप में देखने लगता है और आशा करता है कि वह प्रिय का प्रकाश आकाश-दीप की भाँति हो कर उसे उचित मार्ग पर ले आएगा ।

(पृ ७२–२) कवि कहता है कि उसके मन की जितनी पीड़ाएँ मुँह दबाए हुए पड़ी हैं——वे प्रिय को पा कर फूलों के समान हँसने लगें और कोमल क्रीड़ाएँ करने लगें । प्रिय को पा कर पीड़ाएँ भी आनन्ददायिनी हो जाएँगी ।

धमनी=नाड़ी ।

(पृ. ७३–३) कवि चाहता है कि अब उसके प्रिय से जो भेंट हो, तो अमर-बेलि की भाँति उसके प्रिय चारों ओर से उसे आच्छादित कर लें, जिससे नाड़ियों द्वारा बँधे हुए

जीवन में अकेलापन रहे ही नहीं। अमर-बेलि एक पीली बेलि होती है, जिसमें जड़ नहीं रहती। जिस पौधे पर वह डाल दी जाती है, उसी से रस ले कर वह हरी-भरी रहती है। पौधे का रस प्राप्त कर वह बहुधा पौधे को सुखा भी देती है। कवि अपने प्रिय द्वारा अमर-बेलि के समान ही आलिंगित होना चाहता है, ताकि दोनों की धमनियों का एक ही श्रोत बन जाए और उसका एकाकी जीवन फिर कभी संभव न हो।

संसृति=आवागमन।

(पृ. ७४–१) कवि अपने प्रिय को अपने जन्म-जन्म का प्राण समझता है, और आवागमन के दुःख में साथी समझता है और उनके जागने से (कवि की ओर आकृष्ट होने से) आशा करता है कि पवित्र प्रभात हो जाएगा, इसलिए उनसे अलसाते हुए सुख में जागने की प्रार्थना करता है।

विदग्धता=विद्वत्ता; पाण्डित्व; चतुराई।

(पृ. ७४–२) संसार में जो अपवित्रता है, जो पाप है वह कवि के प्रिय का (ईश्वर का) ज्ञान प्राप्त करे ताकि निर्मलता पुनः स्वच्छ हो जाए, और जितने पाप हैं, सब पुण्य में बदल जाएँ।

(पृ. ७५–१) कवि-हृदय में जब नूतन आशाओं का संचार हो चुका था, जब वह सुखद स्वप्न देख रहा था––जब सुखद स्वप्नों की छाया में वह निद्रा और आलस्य के आवागमन के बीच पड़ा था, उस समय उसकी वेदना पुनः जागृत हो गयी। वह सुख-स्वप्नों में इतना लवलीन था कि उसे यकायक पहचान न सका। उसके मन में विस्मृति थी।

(पृ. ७५–२) कुछ ही क्षणों के पश्चात् कवि उसे पहचान लेता है, क्योंकि उसका तो जीवन में बहुत समय तक साथ रहा था। दुःख से सताये हुए हृदय की वेदना––आँसुओं से पूर्ण चिड़िया के समान है।

(पृ. ७६–१) कवि कहता है कि जब उस चिड़िया रूपी वेदना को हरे-भरे पत्तों के आकर्षण (छल) में भूल जाता है, तब वह हृदय (भावनाओं के क्रीडास्थल) में हूक उठाती हुई जागृत हो जाती है, जैसे चिड़िया कूकती हुई सामने खेल के मैदान में आ जाए।

(७६–२) कवि वेदना रूपी विहंगिनी से पूछता है कि वह रात्रि के मृदु एकान्त में कितना मार्ग चल कर आई है, और उसने सूने आकाश में क्या देखा है? यह बात बतलाने में कवि चाहता है कि वेदना-विहंगिनी हिचके नहीं––स्पष्ट रूप से सारी कहानी कह दे।

(पृ. ७६–३) वेदना ने जो दृश्य देखे हैं, उनका कवि वर्णन करता है। वेदना द्वारा दृश्यों का देखा जाना––उन दृश्यों से तात्पर्य रखता है, जिनमें वेदना का अनुभव किया जा सकता है। पहला दृश्व कवि रात्रि के समय का चित्रित करता है। वह कहता है, जिस समय सुख से संतुष्ट हृदय के भागों पर रात्रि के अंधकार की हलकी काली (श्यामल) छाया पड़ती है––(जब सुखी मनुष्य रात्रि के अंधकार में सो जाते हैं,) जब मीठे स्वप्नों और तारागणों के खेल और लीलाएँ प्रारम्भ होती हैं––उस समय वेदना-रंगिणि ने हृदय-कमलों का (सतप्त मानवों के मुरझाए हुए हृदयों का) विलाप देखा है, और उस विलाप पर चन्द्र-किरणों को हँस-हँस कर पराग-बिन्दु रूपी मोतियों की माला पिरोते देखा है। रात्रि में ओस-कण चारों ओर चन्द्र-किरण का स्पर्श पा कर फैल जाते हैं। कवि उनको चन्द्र-किरणों द्वारा मोती पिरोया जाना समझता है।

(पृ. ७७–२) दूसरा दृश्य समुद्र में ज्वार का है, जब कि उत्ताल तरंगें चन्द्र की ओर आकर्षित होती हैं और ऊँची उठ-उठ कर नीचे गिर जाती हैं। कवि समुद्र को बौने (कम ऊँजाई का व्यक्ति) के रूप में देखता है, जिसके हृदय में चन्द्र को स्पर्श करने की कामना विद्यमान है। उसके लिए वह

लहरों के रूप में बार-बार ऊँचा उठता है, और नीचे गिर जाता है। उसका गर्जन उसका हाहाकार है। हृदय-समुद्र आशाओं के साथ ऊँचा उठता है, मगर फिर निराश हो जाता है।

(पृ. ७७–३) वेदना ने जो तीसरा दृश्य देखा है वह है सदैव मौन रहने वाली पर्वत-मालाओं का, जो सारे दुःख चुपचाप मुँह बन्द किए अपने अभिशापों की जलन बहुत पुराने समय से झेलती चली आ रही हैं, जिनके ऊपर कोई हरियाली नहीं उत्पन्न होती, और जिनको अभिशाप मिला है कि उन्हें मनुष्यों के चरण-स्पर्श का अवसर भी न मिले—इसमें भी उनका निरादर किया गया है। यहाँ उन दुःखी हृदयों की ओर भी संकेत है, जो चुपचाप वेदना सहा करते हैं, और जिनके जीवन में कभी आनन्द (हरियाली) नहीं आती।

(पृ. ७८–२) वेदना ने कलियों को भी (फूलों द्वारा वर्णित) कपट की कहानियाँ सुनते हुए देखा है कि किस प्रकार फूलों को भ्रमरों द्वारा प्रणय में धोखा दिया गया है। वेदना ने भ्रमर को अपनी इच्छा पूर्ण करने के बाद फूलों से उड़ कर जाता हुआ भी देखा है।

(पृ. ७८–३) वेदना ने उन निराशादूर्ण नेत्रों को भी देखा है जिनके आँसू सूख गये हैं। उस प्रलय जैसी दयनीय

ा को भी देखा है, जहाँ कि सदैव ही कोई वस्तु प्राप्त न सकी--चिर अभाव की वेदना का जहाँ साम्राज्य है ।

(पृ. ७९–१) कवि वेदना से पूछता है कि उसकी रानी दना) ने क्या उस सूखी नदी का तल नहीं देखा है, जिसके नारे की पृथ्वी अपनी दुःख भरी कहानी सुना रही है और दोनों किनारों में व्याप्त होती चली जा रही है । क्या ाने (निराश-प्रेमी) को दुःख भरी गाथा कहते सुना है ?

(पृ. ७९–२) कवि कहता है कि वेदना ने निर्जन कुटीर एक कोने में छोटे तेल भरे दीपक का रात्रि भर जलते-ते प्रभात में बुझ जाना भी देखा है । यहाँ आशापूर्ण प्रेमी स्नेह भरे हृदय के प्रतीक्षा में प्रसन्न हो-हो कर प्रभात निराशा से चूर-चूर हो जाने से तात्पर्य है ।

"जैसे प्रभात के हिमकणों में जीवन दबा रहता है, मानव वन का सुख सौन्दर्य और स्वास्थ्य रहता है, उसी प्रकार ाँसू' में सूखे जीवन को हरा-भरा करने की शक्ति रहती । वह रसायन है । सबका निचोड़ ले कर जो बना है । य का सब कुछ इसी में तो है ।"

प्रसाद और उनका साहित्य (पृ. ११९–२०)

(पृ. ७९–३) कवि कहता है कि उसकी वेदना, संसार की सभी प्रकार की वेदनाओं का अनुभव प्राप्त लिया है, अब सबका सार ले कर उसके जीवन में सुख का सर्वथा अभाव है, प्रभात के ओस-कण की आँसू बन कर इस सारे संसार को अपना घर मान बरस पड़े।

—:०:—